वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं.-197

भगवान ऋषभदेव दशावतार नाटक

लेखिका :

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

जम्बूद्वीप हस्तिनापुर

प्रकाशक :

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र. 250404

17 जुलाई, 2000

प्रथम संस्करण — मूल्य

2000 प्रति — 20-00

भगवान ऋषभदेव दशावतार -नाटक

१. राजा महाबल

(आदिपुराण में वर्णित भगवान ऋषभदेव के पूर्वभव सम्बन्धी दशवतारों में से प्रथम अवतार राजा महावल का वर्णन इसमें दर्शाया गया है।)

सामूहिक- प्रार्थना का एक गीत

राजदरबार का दृश्य- अप्सरा का नृत्य

विद्याधर राजा महाबल का आज जन्मदिवस है। महाराजा महाबल जो कि विद्याओं के अधिपति हैं, सिंहासन पर बैठे हैं। अनेक वीराँगनाएँ उन पर क्षीरसमुद्र के समान श्वेतवर्ण के चमर ढोर रही हैं। सामने अनेक दीपकों के थाल सजे हैं। तभी अकस्मात् द्वारपालों का स्वर सुनाई पड़ता है-

सभी द्वारपाल : (एक स्वर से) - महाराज की जय हो! महाराज की जय हो! राजाधिराज! आज आपके जन्मदिवस पर हम सब आपके दीर्घ जीवन की कामना करते हैं (पुष्पाँजलि बिखेर देते हैं)

(द्वारपालों के इतना कहने के बाद बाहर खड़े प्रजाजन उच्चस्वर में महाराज की जय जयकार करते हुए तथा बधाई गीत गाते हुए प्रवेश करते हैं।)

प्रजाजन : राजाधिराज की जय हो ! विद्याधर महाबल महाराज की जय हो!

उनमें से एक : हे राजन् ! आज के पावन अवसर पर हम सब की यही भावना है कि आप चिरकाल तक इसी प्रकार इस वसुन्धरा को सुशोभित करते रहें।

(इतना कहकर राजाधिराज को उचित सम्मान प्रदान करके सभी प्रजाजनों ने राजदरबार में अपना उचित स्थान ग्रहण किया।

महाराज के आजू- बाजू उनके चार बुद्धिमान मंत्री बैठे हुए हैं। वे सब क्रम-क्रम से खड़े होकर विनयपूर्वक कहते हैं-)

महामतिमंत्री : राजाधिराज की जय हो! आज मैं अपने आपको पुण्यशाली समझता हूँ कि हमें आपका जन्मोत्सव मनाने का अवसर प्राप्त हुआ। इस स्वर्णावसर पर यही शुभकामना है कि आप जयवन्त हों।

संभिन्नमति : राजन्! आपको जन्मदिन मुबारक हो! आपका यह जन्मदिन आपके जीवन में ढेरों खुशियाँ लाए तथा आप हजारों साल जिएँ।

शतमति : महाराज आपकी जय हो! आज के इस स्वर्णदिवस पर यही मंगल-कामना है

कि भगवान हमारी आयु के भी बाकी वर्ष आपकी आयु में डाल दें और युग-युग तक आपकी कीर्ति पताका फहराती रहे।

स्वयंबुद्ध : हे महात्मन्! आपके इस पावन जन्मदिवस पर आपके दीर्घजीवन की कामना करता हुआ यही कहना चाहता हूँ कि आप अपने चित्त को हमेशा धर्म में ही लगाए रखें।

(इस प्रकार क्रम-क्रम से एक-एक मंत्री राजा के सम्मुख अपनी लाई भेंट रख देते हैं। तभी अचानक एक वृद्ध माली सुंदर-सुंदर पुष्पों से भरी टोकरी लेकर महाराज के समक्ष उपस्थित होता है।)

वृद्धमाली : (राजा के ऊपर पुष्प बरसाते हुए) - महाराज की जय हो ! हे अन्नदाता ! आप दीर्घायु हों। हजारों साल तक इस पृथ्वी पर रहें, यही प्रार्थना है।

(इसी प्रकार अन्य देशों के राजाओं द्वारा भेजे गए प्रतिष्ठित पुरुषों ने भी राजा को भेंट देकर अभिवादन कर अपना स्थान ग्रहण किया।)

अब राजा महाबल मंत्रिमण्डल के साथ सभामण्डप में बैठे हुए हैं तभी स्वंयबुद्ध मंत्री राजा को प्रसन्न देखकर कहता है।

स्वयंबुद्ध मंत्री : महाराज! आप विद्याधरों के स्वामी हैं और आपको जो यह लक्ष्मी प्राप्त हुई है उसे आप अपने पूर्व जन्म के पुण्य का ही फल समझिए।

हे प्रभो! जिस प्रकार दीपक के बिना प्रकाश नहीं हो सकता तथा मेघ के बिना वृष्टि नहीं हो सकती उसी प्रकार धर्म के बिना किसी भी सम्पदा की प्राप्ति नहीं हो सकती।

राजा महाबल : (प्रसन्न मुद्रा में सिर हिलाते हुए) हे मंत्रिन् ! आप की बात बिलकुल ठीक है।

स्वयंबुद्ध मंत्री : महाराज ! जिस प्रकार विष खाने से जीवन नहीं होता उसी प्रकार अधर्म से सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

इस प्रकार स्वयंबुद्ध द्वारा हितकारी वचन कहने पर अन्य तीनों मंत्री क्रोधित मुद्रा में उसकी ओर देखने लगे और सब एक साथ बोल पड़े कि-

हे राजन् ! यह सब बकवास है वर्तमान के सुख छोड़कर आगे भव के सुखों की अभिलाषा करना कौन सी बुद्धिमानी की बात है ?

स्वयंबुद्ध : (तीनों मंत्रियों को समझाते हुए)- देखो मित्रों ! जिस प्रकार म्यान में तलवार रहती है फिर भी म्यान और तलवार में एकरूपता नहीं हो जाती उसी प्रकार शरीर में आत्मा है फिर भी शरीर और आत्मा का सम्बन्ध ऐसा है जैसा घर और दीपक का।

यदि वर्तमान शरीर के पहले इस जीव का कोई शरीर नहीं होता और यह नवीन ही उत्पन्न हुआ होता तो जीव की सहसा दुग्धपानादि में प्रवृत्ति नहीं हो सकती थी इसी प्रकार वर्तमान शरीर के बाद भी यह जीव कोई न कोई शरीर धारण करेगा यही आस्तिक्य मतावलम्बियों का कहना है।

इस प्रकार स्वयंबुद्ध के वचनो से सभी ने आत्मा के पृथक् अस्तित्व को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया, राजा महाबल भी अतिशय प्रसन्न हुए।

पश्चात स्वयंबुद्ध ने राजा के वैराग्य को बढाने हेतु कथाओं को सुनाया तथा राजा की ओर अभिमुख होकर बोला-

स्वयंबुद्ध : हे राजन् ! संसार में आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ये चार ध्यान कहे गए हैं। इनमें से आर्तध्यान करके दण्ड नामक राजा तिर्यंच गति में गया, रौद्रध्यान से राजा अरविन्द मरकर नरक गया, धर्मध्यान से राजा शतबल ने स्वर्ग प्राप्त किया तथा राजा सहस्रबल ने शुक्लध्यान के प्रभाव से मोक्ष पद प्राप्त कर लिया। यदि आप निर्दोष फल चाहते हैं तो आपको भी जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे हुए प्रसिद्ध महिमा से युक्त जैनधर्म की धर्मध्यानपूर्वक उपासना करनी चाहिए।

इस प्रकार मंत्री स्वयंबुद्ध के उदार और गम्भीर वचन सुनकर सम्पूर्ण सभा बड़ी प्रसन्न हुई। पुनः सभी सभासद उसकी इस

प्रकार स्तुति करने लगे-

सामूहिक स्वर : अति सुन्दर बात बताई मंत्रिवर ने ! महाराज ! आपके यह मंत्री गुण और शील से सुशोभित हैं, मन-वचन-काय से सरल हैं, गुरूभक्त हैं, शस्त्रों के वेत्ता हैं तथा अतिशय बुद्धिमान हैं। महाराजा महाबल ने भी स्वयंबुद्ध की प्रशंसा की तथा उसका खूब सत्कार किया।.(सत्कार में जवाहरातों का थाल भेंट करते हुए दिखावें)

(इस प्रकार राजा की जय जयकार के साथ जन्मदिवस समारोह की सभा सम्पन्न हुई।)

(द्वितीय-दृश्य)

एक दिन स्वयंबुद्ध मंत्री सुमेरू पर्वत के दर्शन करने जाता है। वहाँ भक्तिपूर्वक अकृत्रिम मंदिरों के दर्शन कर वह जम्बूद्वीप का प्राकृतिक सौन्दर्य देख रहा था तभी उसे दो मुनियों के दर्शन हुए। उसने उनके श्रीचरणों में नमन करके कुछ प्रश्न पूछे-

स्वयंबुद्ध : भगवन् ! आप अपने दिव्यज्ञान से यह बतलाइए कि हमारा राजा महाबल सम्यग्दृष्टि है या नहीं ?

मुनिराज : भव्यात्मन् ! राजा महाबल सम्यग्दृष्टि है। आप उस महात्मा के प्रति शंकित क्यों हो रहे हैं ?

स्वयंबुद्ध : नहीं मुनिवर ! इसमें शंका की कोई बात नहीं है किन्तु मैं केवल इतना जानना चाहता हूँ कि उसे जिनधर्म में प्रीति कराने वाले मेरे वचन अन्दर से सुहाते हैं या नहीं ? मेरे वचनों से उसका कल्याण होगा या नहीं ? भगवन् ! मुझे चिन्ता है कि उसके अन्य तीनों मंत्री उसे नास्तिकता एवं संसार बढ़ाने का उपदेश देते हैं तो कहीं राजा महाबल उसमें भटककर नरकादि गतियों में न चला जाए।

दूसरे मुनिराज : मंत्रिन ! तुम ऐसा विचार मन से निकाल दो क्योंकि राजा महाबल निकट संसारी है। वह सबकी बात छोड़कर तुम्हारी ही मानेगा। तुम्हें जानकर प्रसन्नता होगी कि यह तुम्हारा राजा आज से दशवें भव में भरतक्षेत्र का प्रथम तीर्थंकर होने वाला है।

स्वयंबुद्ध : (अत्यन्त खुश होकर) नमोस्तु नमोस्तु भगवन् ! आपके चरणों में शत शत नमोस्तु ! आपकी वाणी से मन में अतीव सन्तोष हुआ, जन-जन के उपकारक आप सन्तों से धरती का गौरव है। आप

धन्य हैं, धन्य हैं महाराज ! आपकी सदा जय जयकार होती रहे।

मुनिराज : स्वयंबुद्ध ! तुम अब शीघ्र जाओ, राजा महाबल इस समय तुम्हारा ही इन्तजार कर रहे हैं। उन्होनें आज रात्रि में दो स्वप्न देखे हैं सो उनका फल वे तुमसे जानना चाहते हैं। तुम उनका फल बताकर राजा को सन्तुष्ट करो।

स्वयंबुद्ध : उन्होंने क्या देखा है सपनों में ? आप तो अन्तर्यामी हैं, बताइए न मुझे!

आदित्यगति मुनि :उसने पहले स्वप्न में देखा है कि तुम्हारे सिवाय अन्य तीन दुष्ट मंत्रियों ने उसे कीचड़ से भरे तालाब में डाल दिया है और तुमने उसे कीचड़ से निकालकर सिंहासन पर बैठाया है।

स्वयंबुद्ध : (आतुर होकर)- दूसरे स्वप्न मे राजा ने क्या देखा है स्वामी !

मुनिराज : वत्स ! दूसरे स्वप्न मे देखा है कि अग्नि की एक प्रदीप्त ज्वाला बिजली के समान चंचल और प्रतिक्षण क्षीण होती जा रही है।

स्वयंबुद्ध : स्वामी ! उन स्वप्नों के फल क्या हैं ?

मुनि आदित्यगति :प्रथम स्वप्न का अर्थ है कि तुम्हारे निमित्त से वह आगामी भव में महान विभूति को प्राप्त होगा एवं दूसरे स्वप्न के अनुसार उसकी आयु मात्र एक माह शेष है। (इस प्रकार कहकर दोनों मुनि आकाशमार्ग से विहार कर गए)

(स्वयंबुद्ध जल्दी-जल्दी राजा के पास पहुँचने का उपक्रम करता है।)

(तृतीय दृश्य)

राजमहल में शयनकक्ष का दृश्य, राजा महाबल प्रातःकाल शैय्या से उठते हैं-

राजा महाबल : (दोनों हाथ जोड़कर) ऊँ नमः सिद्धेभ्यः (णमोकार मंत्र का उच्चारण)

रानी : (राजा के चरण स्पर्श करके) स्वामी ! आपकी तबियत तो ठीक है न ?

महाबल : हाँ देवी ! तबियत तो ठीक है किन्तु मन कुछ विक्षिप्त है !

रानी : महाराज ! सबेरे सबेरे ऐसी कौन सी बात हो गई जिससे आपका मन अशान्त है ? देव ! कहीं मुझसे कोई गलती तो नहीं हो गई है?

महाबल : नहीं देवी ! ऐसी कोई बात मत सोचो तुम अपने मन में, तुम्हारी सेवा और प्रेम को तो मैं कभी भूल ही नही सकता। (रानी के नजदीक जाकर प्यार से उसका स्पर्श करते हुए) प्रिये ! आज रात

को मैंने दो स्वप्न देखें हैं सो उनके फलों को जानने के लिए मन व्याकुल हो रहा है। अब समझ गई महारानी आप मेरी व्यथा।

रानी : (आकुलित होकर) नाथ ! आपके स्वप्न तो सदा अच्छे ही होते हैं। आज आपने ऐसे कौन से स्वप्न देखे हैं जो सुबह से ही आपको व्याकुल किए हैं। जरा मैं भी तो जानूँ उन स्वप्नों को ? बताइये प्रभो ! वे स्वप्न क्या हैं ?

महाबल : मेरे सपनों की असली रानी तो तुम्ही हो। कोई आकुलता मत करो। मेरा स्वयंबुद्ध मंत्री आने ही वाला होगा तभी दोनों सपने बताऊंगा, उसी समय उनका फल भी सुन लेना।

रानी : ठीक है, यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो। अब आप स्नान करके जिनमंदिर का दर्शन करें पुनः आगे की दिनचर्या चलेगी।

राजा महाबल नित्य क्रिया से निवृत्त होकर राजदरबार में विराजमान होते हैं।

(चतुर्थ दृश्य)

राजदरबार का दृश्य, सभी मंत्री आ-आकर अपना आसन ग्रहण करते हैं। राजा का सामूहिक सम्बोधन-

महाबल : दरबार में उपस्थित मेरे प्रिय सभासदों ! जीवन में धर्म से बढ़कर कोई अमूल्य वस्तु नहीं है अतः सभी को परम अहिंसामय धर्म का पालन करते हुए ही इस लोक और परलोक को सुखी बनाना चाहिए।

हम सबके पुण्य से स्वयंबुद्ध जैसे धर्मप्रिय मंत्री हमारे राज्य में हैं इनसे समय-समय पर उत्तमदायक कथाएँ सुनकर जीवन को सफल बनाना चाहिए।

(यह सुनकर तीनों मंत्री तो मुँह बिगाड़कर स्वयंबुद्ध को कटाक्ष भरी दृष्टि से देखते हैं और पूरी सभा में धर्म का जय-जयकार होता है) पुनश्च-

महाबल : हे स्वयंबुद्ध मंत्री ! आप मंत्रशाला मे आकर मुझसे बात करें, कुछ आवश्यक परामर्श करना है।

स्वयंबुद्ध : जो आज्ञा महाराज !

(राजा और स्वयंबुद्ध मंत्रशाला में पहुँचकर परामर्श करते हैं वहाँ स्वयंबुद्ध उन्हें मुनियों द्वारा बताई गई पूरी बात बताकर कहता है-)

स्वयंबुद्ध : महाराज ! मेरा निवेदन है कि आप अपनी एक माह की शेष आयु को पूर्ण धर्मध्यान से व्यतीत करने हेतु सल्लेखना ग्रहण कर लें।

महाबल : ठीक है, मैं शीघ्र ही शुभ मुहूर्त में पुत्र अतिबल को राजगद्दी सौंपकर विरक्ति ले लूँगा और तुम यथाक्रम मुझे सम्बोधित कर समाधि ग्रहण कराते रहना।

(पुत्र को अपना मुकुट बाँधकर राजतिलक कर महाबल राज्य का त्यागकर जिनमंदिर में धर्मध्यान हेतु पहुँच जाते हैं।)

(मंदिर का दृश्य, वहाँ स्तुति करते हुए भक्तगण। राजा महाबल धोती-दुपट्टा पहनकर वहाँ पद्मासन से बैठ गए, स्वयंबुद्ध उन्हें शास्त्र स्वाध्याय सुना रहे हैं।)

स्वयंबुद्ध : संसार में न कोई किसी का शत्रु है न मित्र। केवल अपनी आत्मा के अतिरिक्त सब कुछ अंत मे छूटने वाला है अतः भावों को सदा शुद्ध रखें और शरीर, परिवार आदि से रंचमात्र भी ममत्व न करें।

(इसके पश्चात् राजा महाबल आयु का अन्त समय जानकर एक वृक्ष के नीचे आकर बैठ जाते हैं, वहाँ भी स्वयंबुद्ध का सम्बोधन चल रहा है।)

स्वयंबुद्ध : हे राजन् ! आप महान् पुण्यशाली हैं। आज से दश भव पश्चात् आप इस कर्म भूमि के प्रथम तीर्थंकर बनने वाले हैं।

महाबल : (हाथ जोड़कर सबसे क्षमायाचना करते हुए) सभी प्राणियों से मैं क्षमा माँगता हूँ और सभी के प्रति मेरा पूर्ण क्षमाभाव है।

ऊँ सिद्धाय नमः, ऊँ सिद्धाय नमः, ऊँ सिद्धाय नम।

(इस उच्चारण के साथ ही उनके शरीर से आत्मा निकल गई और सांसारिक जन स्त्री-पुत्र आदि पिता के वियोग में अश्रु बहा रहे हैं।)

(राजा महाबल अपने शरीर का त्याग कर जिनधर्म के प्रभाव से द्वितीय स्वर्ग में देव हुए)

२. ललितांगदेव

मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य

स्वर्ग का दृश्य-इन्द्रसभा में अप्सरा का नृत्य

(कत्थक या किसी भी शास्त्रीय संगीत पर आधारित संगीत की धुन पर)

(प्रथम दृश्य)

ईशान इन्द्र की सभा में चर्चा चल रही है कि आज हमारे स्वर्ग में धरती के एक राजा का जन्म होने वाला है।

ईशान इन्द्र : स्वर्गलोक के मेरे प्रिय देव, देवियों ! आज हमारे स्वर्ग में एक पुण्यशाली नए सदस्य का जन्म होने वाला है, सो आप सब उसके स्वागत की तैयारी करें।

एक देव : स्वामी! आप किस पुण्यशाली के बारे में आज कह रहे हैं?

दूसरा देव : हाँ, इन्द्र महाराज यहाँ तो रोज ही अनेक देव-देवियों के जन्म होते रहते हैं तब तो आपने कभी कुछ नहीं कहा। आज कौन से विशेष देवता यहाँ आने वाले हैं ?

इन्द्र : इसीलिए तो मैने पुण्यशाली कहा है। सुनो ! मैं तुम लोगों को उसके विषय में बताता हूँ। अभी-अभी कुछ देर पहले ही मध्यलोक के एक विद्याधर राजा महाबल ने बाईस दिन की उत्तम सल्लेखनापूर्वक वैराग्यभाव से अपना मनुष्य शरीर छोड़ा है वही अभी यहाँ ललिताँग नाम का देव होने वाला है।

इन्द्राणी : हे पुरन्दर ! उस देव में क्या विशेषता होगी? जिसका नाम आप इतनी श्रद्धा से ले रहे हैं ?

ईशानेन्द्र : देवी ! मैं उसी के बारे में बता रहा हूँ। उसकी विशेषता यह है कि अब से आठ भव बाद नवमें भव में वह ललितांग देव जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर भगवान के रूप में जन्म लेने वाला है।

सभी देव मिलकर :जय हो, तीर्थंकर भगवान की जय हो ! ईशानेन्द्र महाराज की जय हो ! नाथ ! अब बताइए, हम लोग क्या-क्या तैयारी करें जिससे वे देव साथी हमेशा प्रसन्न रहें।

ईशानेन्द्र : देखो ! उस श्रीप्रभ विमान में उपपाद शैय्या ठीक-ठाक तो है न !

उसे फूलों से सुसज्जित कर दो और वहाँ पर जाने वाले नियोगी देवों को कहो कि शीघ्र नए अतिथि के स्वागत हेतु वहाँ पहुँच जाएँ।

(द्वितीय दृश्य)

स्वर्ग में सुन्दर सुसज्जित शैय्या तैयार है, शैय्या ऊपर चारों ओर से ढकी हुई है। उसमें अन्दर एक नवयुवक सो रहा है। बाजे, नगाड़ों की ध्वनि हो रही है, पुष्पों की वर्षा तथा मन्द-मन्द वायु चल रही है कि तभी अनेक देव-देवी उस शैय्या के समीप पहुँचकर नमस्कार की मुद्रा में खड़े हो जाते हैं।

ललितांग देव : (शैय्या पर उठकर बैठे और आगे से शैय्या का पर्दा हटाया) ऊँ नमः सिद्धेभ्यः। (णमोकार मंत्रोच्चारण) (आश्चर्यपूर्वक) ओह ! मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ आ गया? यह सुन्दरता मै कहाँ की देख रहा हूँ ? ये सब मुझे नमस्कार क्यों कर रहे हैं ?

देवगण : हम सभी देवों का प्रणाम स्वीकार करें देव ! ललितांग देव ! स्वर्ग में आपका शुभागमन मंगलमय हो ! आप यहाँ यह सब स्वर्ग का सौन्दर्य देख रहे हैं। ललितांग नामक देव के रूप में आपका यहाँ जन्म हुआ है।

ललितांग देव : कुछ विचारणीय मुद्रा मे अच्छा अब मैं समझ गया, अवधिज्ञान से मुझे पूर्वभव की सब बातें मालूम हो गई हैं। ओह ! यह स्वयंबुद्ध मंत्री के उपकार का फल है, उसके सम्बोधन और मेरे तप का प्रभाव ही मुझे स्वर्ग के सुख में लाया है।

देवगण : (समीप जाकर) हे स्वामिन् ! आप पुण्यवान हैं, आपकी सदा विजय हो। हे नाथ ! स्नान की सामग्री तैयार है, आप शैय्या से उठें और मंगलस्नान करके सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवान की पूजन कीजिए पुनः अपने देव मित्रों के साथ जाकर अपने वैभव का सर्वेक्षण कीजिए।

(नहा-धोकर पूजन के वस्त्र पहनकर ललितांग देव तैयार हो गया और अपने साथी देवों के साथ एक अकृत्रिम मंदिर में पहुँचकर अभिषेक-पूजन किया।)

(मन्दिर का दृश्य है और वहाँ लोग दर्शन करने आ रहे हैं उसी मध्य उपर्युक्त दृश्य दिखावें।)

पुनः स्वर्ग में वापस आकर-

एक देव : देखिए ललितांग जी ! अब आपको मैं यहाँ की व्यवस्था बता रहा हूँ। हे देवोत्तम! स्वर्ग के ये दिव्य वस्त्र, माला, मुकुट, आभूषण आदि ग्रहण करें जो हमेशा खिले पुष्प के समान आपके शरीर पर शोभायमान रहेंगें।

ललितांग देव : धन्यवाद, देव महाराज ! आप सबके स्नेह का मैं आभारी हूँ। हम और आप सभी मिलकर यहां पर स्वर्ग सुख का उपभोग करते हुए धर्म आराधना करेंगें, क्योंकि धर्म से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है।

देव : (चार देवियों को सामने प्रस्तुत करते हुए) हे ललितांग देव ! इस स्वर्ग में यद्यपि हजारों देवियाँ आपकी सेवा में रहेंगी फिर भी स्वयंप्रभा, कनकप्रभा, कनकलता और विद्युल्लता नाम की चार महादेवियाँ आपकी मुख्य पत्नियाँ हैं और ये सदैव आपका मनोरंजन करती हुई दिव्य भौतिक सुख प्रदान करेंगी।

(वे देवियाँ आगे बढ़कर ललितांगदेव के चरण स्पर्श कर उनके आजू-बाजू खड़ी हो जाती हैं)

ललितांग देव : (हाथ जोड़कर) हे प्रभो ! जिस धर्म के प्रभाव से मुझे यह सब लक्ष्मी प्राप्त हुई है वह जिन धर्म सदा जयवन्त रहे।(देवियों की ओर देखकर) यह रूप-सौन्दर्य आदि भी आप लोगों को पूर्वजन्म के पुण्यप्रभाव से ही मिला है। चलिए देवियों ! अब हम अपने भवन में चलते हैं।

(ये सभी अपने-अपने स्थानों पर चले जाते हैं)

(तृतीय-दृश्य)

स्वर्ग के सुखों को भोगते हुए ललितांग देव का जीवन व्यतीत हो रहा था, उसका अपनी स्वयंप्रभा रानी के प्रति अत्यधिक स्नेह था अतः उसके साथ वह प्रायः अनेक बाग-बगीचों में क्रीड़ा किया करता था।

(यहाँ दाम्पत्य वन क्रीड़ा, रासलीला और मनोरंजन के कुछ दृश्य प्रस्तुत करें।)

(चतुर्थ-दृश्य)

(ललितांग देव की देवायु के छह माह शेष रह गए तो उसके गले में पड़ी मन्दार पुष्प की माला मुरझाने लगी अतः वह अपनी आयु का अन्तकाल समझकर दुःखी रहने लगा।)

ललितांग देव : (गले की मुरझाती माला देखते हुए) ओह ! यह मेरी माला क्यों सूख रही है ? लगता है कि मेरी आयु का अन्तकाल आ गया है। मैं इन स्वर्ग सुखों को कैसे छोड़ूंगा?

देवसाथी : महानुभाव! आप इस प्रकार से चिन्तित और दुःखी न हों, यह तो विधी का विधान है कि जो जीव जन्म लेता है उसका मरण अवश्यंभावी है।

ललितांग देव : मित्र ! मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ किन्तु अपनी प्राणप्यारी स्वयंप्रभा देवी को नहीं छोड़ सकता।(शोक करते हुए) उसके बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता। सखे! तुम्ही बताओ, अब मैं क्या करूँ ? कौन सा उपाय करूँ ? जिससे मुझे मरना न पड़े और मेरी रानी मुझसे छूटने न पाए।

कई देव एक साथ :हे देवोत्तम ! आपके लिए ऐसा विलाप उचित नहीं लगता क्योंकि आज से आठ भव पश्चात् आप तो मध्यलोक में तीर्थंकर का अवतार लेने वाले हैं।

एक देव : जय हो, भावी तीर्थंकर भगवान की जय हो।

ललितांग देव : (कुछ शान्त होकर दीनमुद्रा में) मेरे मित्रों ! आप लोगों के सम्बोधन से मुझे कुछ शान्ति तो मिली है लेकिन यह वैभव, यह सुख, ये रानियाँ सभी कुछ छोड़कर मरने का भावमात्र आते ही मेरे मन की अशान्ति बढ़ जाती है, भय से शरीर काँपने लगता है।

देव : लेकिन मित्र ! संसार की यही नियति है अतः आप वैराग्य भाव धारण करके इस नश्वर शरीर का त्याग करें। देखो ! कहा भी है

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होए।
या कबहूं इस जीव का, साथी सगा न कोए।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोए।
घर सम्पत्ति पर प्रगट है, पर है परिजन लोए ।।

ललितांग देव : (एकदम शान्तचित्त होकर) ठीक है, साथियों ! अब मेरा मन शान्त हो गया है, आप लोगों के सम्बोधन से मुझे असीम धैर्य प्राप्त हुआ है। मैने सोच लिया है कि अब मैं जिनमन्दिर में जाकर भगवान की भक्ति में अपना मन लगाऊँगा।

सभी देव : बहुत उत्तम, बहुत उत्तम। आपका पुरूषार्थ सफल हो और उत्तम मनुष्यगति में जन्म लेकर आप अपने सत्कार्यों से पृथ्वी की जनता का मार्गदर्शन करें यही हमारी मंगल कामनाएँ हैं।

(एक चैत्यवृक्ष के नीचे ललितांग देव पद्मासनपूर्वक बैठ गए और "ॐ सिद्धाय नमः" मंत्र का उच्चारण करते हुए उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग किया। इस समाधि के प्रभाव से वे जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र में राजा वज्रबाहु की धर्मपत्नी वसुन्धरा के गर्भ मे आ गए)

(पंचम-दृश्य)

(इधर स्वयंप्रभा देवी भी ललितांग देव के वियोग में बड़ी दुःखी रहने लगी तब उसे भी देव-देवियों ने संबोधित कर उसका शोक दूर किया।)

स्वयंप्रभा : (विलाप करती हुई) हाय दैव ! यह तूने क्या किया ? अब मैं कैसे रहूँ, क्या करूँ? मुझे स्वर्ग का यह सारा वैभव पति के बिना बिल्कुल व्यर्थ लग रहा है।

एक देवी : देवी जी ! आप इतना दुःखी होकर मन को कमजोर मत कीजिए, गए जीव को कोई वापस नहीं ला सकता अतः आप शान्ति धारण कर हम लोगों के साथ क्रीड़ा कीजिए।

दृढधर्म नामक देव :देखो स्वयंप्रभा देवी ! तुम भी ललितांग के समान धर्म में मन लगाकर जीवन व्यतीत करो तो इस भव में और अगले भव में भी उत्तम पर्याय प्राप्त करोगी अन्यथा पशु आदि गतियों में जन्म लेकर दुःखों का ही सामना करना पड़ेगा।

स्वयंप्रभा : (शान्तचित्त होकर) मैं बहुत सोचती हूँ लेकिन मेरा दिल ललितांग देव के वियोग में टूट चुका है इसलिए ये सारे भोग-विलास मुझे बिल्कुल नीरस लगते हैं। फिर भी आप लोगों के सम्बोधन से मुझे निश्चित ही आत्मशक्ति प्राप्त हो रही है अतः अब मैं धर्मध्यान में

अपना जीवन व्यतीत करने की ही कोशिश करूँगी।

(अनन्तर भगवान की भक्ति में मन लगाती हुई उस स्वयंप्रभा देवी ने मध्यलोक में आकर सुमेरूपर्वत के सौमनस वन में एक चैत्यवृक्ष के नीचे शान्तिपूर्वक अपने दैवी शरीर का त्याग किया और पुण्यप्रभाव से उसी विदेहक्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा वज्रदन्त की रानी लक्ष्मीमती के गर्भ मे आ गई और नवमाह पश्चात् "श्रीमती" कन्या के रूप मे जन्म ले लिया।)

३. राजावज्रजंघ

-मंच पर एक सामूहिक नृत्य-

राजमहल का दृश्य है, वहाँ रात्रि के गहन अन्धकार में भी जगह-जगह पहरेदारों की चहल-पहल दिख रही है। राजमहल में सभी सुख की निद्रा में मग्न हैं (उन्ही में से युवावस्था को प्राप्त कन्या श्रीमती भी एक कमरे में सो रही है कि अकस्मात् क्या होता है ?)

अनेक देव-देवियों का सामूहिक स्वर : - जय हो, जय हो, श्री यशोधर केवली भगवान की जय हो। अरे भाई ! जल्दी चलो, विदेहक्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी में यशोधर मुनिराज को केवलज्ञान हुआ है। वहाँ हम सबको मिलकर उनकी पूजा करना है।

देवियाँ : देखो, देखो, सखियों! उस मनोहर उद्यान में कितना सुन्दर वातावरण दिख रहा है, अधर आकाश में रचित गन्धकुटी की शोभा तो देखते ही बनती है, जल्दी चलो वर्ना हम लोगों को बैठने की जगह नहीं मिलेगी फिर पीछे बैठना पड़ेगा।

(जोरदार नगाड़ों एवं जय जयकारों के साथ आकाशमण्डल गुंजायमान हो रहा है। अकस्मात् उन्हीं शब्दों से कन्या श्रीमती सोकर उठ जाती है।)

प्रातःकाल का समय, सूर्योदय का दृश्य और राजमहल का एक कमरा है।

श्रीमती : (पलंग पर चौंक कर उठती हुई) ओह ! यह मैं क्या देख रही हूँ? यह तो देवों की सेना कहीं जा रही है ! अरे ! मैं भी तो पहले जनम में देवी थी और अपने पति ललितांग देव के साथ इसी प्रकार वन्दना करने जाया करती थी। अहो...अब तो मुझे अपने पूर्व भव का सब कुछ याद हो आया है, मेरे प्राणप्रिय पतिदेव अब कहाँ होंगे ? मैं उनसे कैसे मिलूं, क्या करूँ?....

(इतना बोलते-बोलते श्रीमती मूर्च्छित हो गई तब महल की दासियाँ उसके ऊपर गुलाबजल, चन्दन आदि शीतल वस्तुएँ डालकर उसे होश में लाने का पुरूषार्थ करती हैं।) इतने में खबर पाकर

माता-पिता आ जाते हैं -

राजा वज्रदन्त : (श्रीमती के पिता) - बेटी श्रीमती ! क्या कष्ट है तुझे। पुत्री ! क्या तूने कोई अशुभ सपना देखा है या किसी कारण से तुझे यहाँ डर लग रहा है ?

लक्ष्मीमती : (श्रीमती की माँ) - (गोद में उसे लेती हुई) आ जा मेरी लाड़ली, तेरी तबियत कुछ गड़बड़ है क्या ? बोल मेरी बच्ची ! आज तुझे कुछ नई तकलीफ हो गई है क्या ? अपने दिल की बात माँ से तो बता बेटी....

श्रीमती : माँ, पिताजी ! इस समय मेरे मन की स्थिति बड़ी डांवाडोल है, मेरी मानसिक व्यथा को आप लोग नहीं समझ सकते। (रोने लगती है) नहीं नहीं.... मैं नहीं जानती, मुझे क्या हो रहा है? (फिर मूर्च्छित हो गई)

लक्ष्मीमती : (पति से) नाथ ! बेटी को यह कौन सा रोग हो गया है ? इसकी स्थिति देखकर मुझे घबड़ाहट हो रही है, इस युवावस्था में कहीं इसे किसी भूत प्रेत की बाधा हो गई तो क्या होगा स्वामी !

वज्रदन्त : देवी ! ऐसी चिन्ता मत करो। मुझे लगता है कि इस समय इसे कोई पूर्वभव की घटना याद आ गई है, इसीलिए यह परेशान है। इसकी मूर्च्छा का [illegible] ोई कारण नहीं होना चाहिए।

(द्वितीय दृश्य)

राजदरबार का दृश्य, एक अप्सरा का नृत्य चल रहा है, नृत्य रूकते ही-

वनमाली :- महाराज की [illegible] हो जय हो, महाराज ! आपका दिवस मंगलमय हो।

राजा वज्रदन्त : कहो वनमाली ! सवेरे-सवेरे क्या शुभ समाचार लेकर आये हो ?

वनमाली : स्वामी ! शुभ समाचार यह है कि आपके गुरू यशोधर महाराज को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है, सो अपने नगर के उद्यान में देवताओं की भीड़ लगी हुई है। नाथ ! वे केवली भगवान तो अब विचित्र वैभव से युक्त गन्धकुटी में विराजमान हो गये हैं और असंख्य देव-देवी, मनुष्य, पशु-पक्षी एवं मुनिगण भी उनकी सभा में हाथ जोड़कर बैठे हुए हैं।

उसी समय सेनापति आकर सन्देश देता है -

सेनापति : राजाधिराज की जय हो। महाराज ! आपकी आयुधशाला में एक चमकता हुआ दिव्य चक्ररत्न आज प्रगट हुआ है। जो आपके चक्रवर्ती बनने की अग्रिम सूचना दे रहा है। स्वामिन् ! जल्दी चलें आयुधशाला में और चक्ररत्न का अलौकिक प्रकाश देखें।

(राजा दो समाचार एक साथ सुनकर चिन्तन करने लगते हैं।)

राजा वज्रदन्त : मैं समझ गया, समझ गया। चार पुरूषार्थों में प्रथम जो धर्मपुरूषार्थ है , मुझे सर्वप्रथम उसी का पालन करते हुए यशोधर गुरूदेव के पास जाकर केवलज्ञान की पूजा करनी चाहिए।

(अपने बड़े भारी वैभव और परिकर के साथ वे चल देते हैं और समवसरण में पहुँच कर जय- जयकार करते ही उन्हें अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है)

(तृतीय दृश्य)

(भगवान के समवशरण का दृश्य, वहाँ एक गोल सभा में लोग बैठे हुए दिव्य ध्वनि सुन रहे हैं। राजा वज्रदन्त का वहाँ पहुँचना) -

वज्रदन्त : जय हो, जय हो, केवली यशोधर भगवान् की जय हो। आपकी इस तपलक्ष्मी का प्रभाव देखकर हे भगवन् ! मेरी खुशी का पार नहीं है। आपके चरणों में मेरा बारम्बार नमस्कार है, नमस्कार है,नमस्कार है।

(क्षण भर सभा में बैठने के पश्चात् राजा वज्रदन्त एकदम उठ खड़े हुए)

वज्रदन्त : ओह ! आश्चर्य ! यहाँ आकर तो मुझे पिछले जन्मों की बातें याद आ रही हैं। (सिर थामते हुए) यह क्या ! मैं तो पूर्व भव में अच्युत स्वर्ग का इन्द्र था, मुझे वहाँ का सारा वैभव बिल्कुल प्रत्यक्ष जैसा दिख रहा है।

गणधर मुनि : हे राजन् ! आप घबराइये मत। आपको आज अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया है।

वज्रदन्त : हाँ प्रभो ! मुझे भी ऐसा ही लग रहा है। अब सब कुछ मुझे ज्ञात हो रहा है कि मेरी पुत्री श्रीमती पिछले भव में ललितांग देव की स्वयंप्रभा नामक प्रिया थी। उसे भी इस समय देवों का वैभव

देखकर अपने पूर्वभव का जातिस्मरण हो गया है इसीलिए वह अपने पति की याद में विक्षिप्त हो रही है।

भगवन् ! अब मैं यहाँ से विदा लेता हूँ और घर जाकर अपनी पुत्री को सब कुछ बताकर उसका शोक शान्त करूँगा।

(पुनः वज्रदन्त चक्ररत्न को लेकर दिग्विजय हेतु निकल पड़ते हैं और अनेक वर्षों तक उसी में लगे रहते हैं। पुनः छहों खण्ड जीतकर नगरी में मंगलप्रवेश करते हैं। तब उनका चक्रवर्ती पद में राज्याभिषेक किया जाता है और जय जयकारों से धरती-आकाश गूंज जाता है।)

(चतुर्थ-दृश्य)

राजमहल की अशोक वाटिका में बैठी हुई राजकुमारी श्रीमती अपनी पण्डिता धाय से मन की बात कहकर उसे समझाती है -

श्रीमती : (धाय से) धाय माँ ! मेरी चिन्ता का निवारण तुम्हारे बिना कोई नहीं कर सकता है।

पण्डिता धाय : पुत्री ! तुम जिस प्रकार कहोगी, मैं उसी प्रकार उपाय करके तुम्हारे कष्ट का निवारण करूँगी। मुझे अपने प्राणों से भी अधिक तुम्हारे प्राणों की चिन्ता है।

श्रीमती : माँ! मेरे जातिस्मरण के कारण मुझे एक उपाय समझ में आ रहा है कि तुम मेरा यह एक चित्र लेकर "महापूत" चैत्यालय में चली जाओ, वहाँ जो इस चित्र को देखकर मेरा पति बनना स्वीकार करे उसका पूरा परिचय पूछकर मुझे बताना।

(चित्र को लेकर धाय एक मन्दिर के मुख्य द्वार पर बैठी है और आने-जाने वालों को बड़ी चतुराई से चित्र दिखाती है अकस्मात् एक राजकुमार आकर उस चित्र को बडे गौर से देखते हुए कहता है उस युवक का नाम है- वज्रजंघ)

वज्रजंघ : (चित्र को देखते हुए) अरे ! इस चित्र में तो मेरे भी पूर्वभव का कथानक छिपा दिखता है यह तो मेरी प्राणप्रिया स्वयंप्रभा देवी मालूम पड़ती है।

(धाय उसका पूरा परिचय पूछकर प्रसन्नतापूर्वक वापस आकर

श्रीमती को सब समाचार सुना देती है)

पुनः पिता वज्रदन्त पुत्री के पास पहुँचकर उसे समझाते हैं -

वज्रदन्त : हे पुत्री ! देखो मैं छह खण्ड जीतकर पृथ्वी का चक्रवर्ती बनकर आया हूँ। मुझे अवधिज्ञान से तेरे सारे कष्टों का पता लग गया है और अब शीघ्र ही मैं उसे ढूंढकर तुम्हारा विवाह रचाने का प्रयत्न करता हूँ। बेटी ! तू खुश हो और अपना कार्य सिद्ध हुआ जान।

श्रीमती : पिताजी ! आपकी कृपा से अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। उस दिन पूर्वभव का स्मरण आ जाने से मेरा मन विक्षिप्त हो गया था। अब आप चिन्ता न करें।

वज्रदन्त : बेटी ! वह ललितांग का जीव उत्पलखेटक नगर में राजा वज्रबाहु का पुत्र वज्रजंघ हुआ है और अब वही तेरा पति बनेगा। तुझे यह जानकर खुशी होगी कि आज वे लोग कुमार वज्रजंघ सहित यहाँ पधारने वाले हैं अतः मै उनके स्वागत की तैयारी करवाता हूँ।

(राजा वज्रबाहु अपनी पत्नी वसुन्धरा और पुत्र वज्रजंघ के साथ नगर में प्रवेश करते हैं और चक्रवर्ती वज्रदन्त अपने परिकर के साथ उनका खूब सम्मान कर महल में प्रवेश कराते हैं। पुनः व्यवहारिक कुशल समाचार पूछने के पश्चात् वज्रदन्त राजा वज्रबाहु से कहते हैं)

वज्रदन्त : राजन् ! आज आपके पदार्पण से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। बहुत दिनों के बाद आप लोगों को देखकर आज मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा है।

वज्रजंघ : (राजा वज्रदन्त के चरण स्पर्श करते हुए) प्रणाम राजन् ! आपका महल मुझे बड़ा अच्छा लगा।

वज्रदन्त चक्रवर्ती : आज मैं इस प्रसन्नता के बदले में आप लोगों को कुछ इच्छित वस्तु देना चाहता हूँ। कृपया आप स्वयं बतलाए कि आपको मेरे घर में सबसे अच्छी चीज क्या लगी है, मैं उसे ही आपके लिए भेंट करूँगा।

वज्रबाहु : हे चक्रिन् ! आपकी कृपा से मेरे यहाँ सब कुछ है अतः आज मैं आपसे किस वस्तु की प्रार्थना करूँ।

वज्रदन्त : नहीं नहीं राजन् ! ऐसा कहकर आप मेरे दिल को न दुखाएं और कुछ न कुछ मेरी भेंट अवश्य ग्रहण करें।

वज्रबाहु : यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मैं यह याचना करता हूँ कि आप अपनी प्रिय पुत्री श्रीमती को मेरे पुत्र के लिए प्रदान कीजिए। ये दोनों सभी प्रकार से दाम्पत्य सूत्र में बंधने योग्य दिखते हैं अतः इनका विवाहोत्सव कर आप एक नया रिश्ता प्रारम्भ कीजिए।

वज्रदन्त : (अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक) बहुत सुंदर, यह आपकी माँग मुझे स्वीकार है। मंत्रिवर ! आप पुरोहित जी को बुलाइये। मुझे शीघ्र ही इन दोनों के विवाह का शुभ मुहूर्त निकलवाना है।

मंत्री . जो आज्ञा महाराज ! अभी पुरोहित जी को उपस्थित करता हूँ।

(पुरोहित उपस्थित होकर अपनी पोथी खोलकर वैठ जाते हैं)

वज्रदन्त : पुरोहित जी ! राजकुमार वज्रजंघ और राजकुमारी श्रीमती के नाम से विवाह का शुभ मुहूर्त निकालकर हमें सन्तुष्ट कीजिए।

पुरोहित : (क्षण भर पुस्तक देखकर) हे पृथ्वीपते ! इस विवाह संस्कार के लिए परसों वैशाख शुक्ला तीज का मुहूर्त अत्यन्त शुभ और कल्याणकारी है।

वज्रदन्त : ठीक है, ठीक है मंत्रिवर ! अव विवाह की खूब जोरदार तैयारी करवाइये। लीजिए पुरोहित जी ! यह अपनी भेंट स्वीकार कीजिए।

(पंचम दृश्य)

विवाह मण्डप का दृश्य, सारा नगर सजा है, अनेक कुलवधुएं मंगलाचार आदि गीत गा रही हैं। तोरण पर वज्रजंघ और श्रीमती एक दूसरे के गले में वरमाला पहना रहे हैं।

रानी लक्ष्मीमती : जोड़ी अमर रहे, खूब फूलो-फलो यही मेरा तुम दोनों के लिए आशीर्वाद है।

रानी वसुन्धरा : दीदी ! आपकी पुत्री अव मेरी पुत्री है। इसे हमारे घर में कोई तकलीफ नहीं होने पाएगी अतः आप कोई चिंता मत कीजिएगा।

(दोनों समधन बहनें एक दूसरे के गले से लगकर स्नेह अश्रु वहाती हैं।)

वज्रदन्त : इन बच्चों का जीवन खूब आनन्द और सुखपूर्वक व्यतीत हो, आप सभी लोग इनके लिए यही आशीर्वाद प्रदान कीजिए।

(चारों ओर से स्त्री-पुरूष उन दोनों पर पुष्पांजलि डालते हुए कहते हैं।)

सामूहिक स्वर : धन्य हैं, धन्य हैं। ये दम्पत्ति धन्य हैं, यह सुन्दर जोड़ी सदा अमर रहे।

(इस प्रकार विवाह समारोह पूर्ण हुआ और नवदम्पत्ति को एक नये महल में प्रविष्ट करा दिया जाता है, जहाँ वे काफी दिनों तक भौतिक सुख का उपभोग करते हैं पुनः एक दिन) -

वज्रबाहु : (वज्रदन्त से) भाई साहब ! हमें यहाँ रहते हुए अब बहुत दिन बीत गये हैं अतः अपने नगर जाने की हम आपसे आज्ञा चाहते हैं। कृपा करके वज्रजंघ और श्रीमती को भी आप आज्ञा प्रदान कीजिए ताकि हमारे नगर की जनता भी अपनी कुलवधू का स्वागत कर सके।

वज्रदन्त : (दुःखी होते हुए) राजन् ! यद्यपि आपका यह कथन मेरे लिए अत्यन्त शोककारी है फिर भी आपके विचारों का मै आदर करता हूँ और शुभ मुहूर्त में आपके प्रस्थान की तैयारी करवाता हूँ।

(इस प्रकार विशाल वैभव के साथ सम्मानपूर्वक राजा वज्रदन्त उन लोगों का विदाई समारोह करते हैं और ये सभी रथ मे बैठकर हाथी घोड़े एवं सेना के साथ अपने नगर उत्पलखेटक में प्रवेश करते हैं वहाँ भी नगरी की शोभा देखते बनती है, खूब बाजे नगाड़ों की धुन बज रही है, महाराजा वज्रबाहु एवं युवराज वज्रजंघ की जय जयकारों से आकाश मंडल गूंज रहा है। अनंतर एक दिन पुण्डरीकिणी नगरी से वज्रजंघ के पास समाचार पहुँचता है)

(छठा दृश्य)

दो विद्याधर कुमार हाथ में रानी लक्ष्मीमती का समाचार पत्र लेकर उत्पलखेटक नगर में पहुँचते हैं। वहाँ राजा वज्रबाहु का दरबार लगा है, युवराज वज्रजंघ अपने योग्य आसन पर बैठे हैं -

विद्याधर कुमार : (दरबार में पहुँचकर) महाराज की जय हो, हम लोग पुण्डरीकपुर से कुमार वज्रजंघ जी के लिए यह सन्देशपत्र लेकर आए हैं। (पत्र कुमार को दे देते हैं)

वज्रजंघ : (पत्र को पढ़कर) ओह ! पिताजी ! इसमें माँ श्री ने लिखकर भेजा है कि मेरे ससुर चक्रवर्ती वज्रदन्त महाराज ने अपने एक हजार पुत्रों और बीस हजार राजाओं के साथ तीर्थंकर यशोधर के शिष्य श्रीगुणधर मुनिराज के पास जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली है।

वज्रबाहु : अरे यह अनहोनी कैसे हो गई ? फिर राज्य का भार कौन संभाल रहा है?

वज्रजंघ : हाँ पिताश्री ! इसमें मातेश्वरी ने यही चिन्ता व्यक्त की है कि चक्रवर्तीजी ने अपने नाबालिग पौत्र (अमिततेत्र के पुत्र) पुण्डरीक को राजतिलक करके दीक्षा ले ली है किन्तु उस बालक पर तो शत्रु राजा आक्रमण करके हमारा राज्य हथिया लेंगे इसलिए हे पुत्र वज्रजंघ ! तुम शीघ्र आकर यहाँ की सुयोग्य व्यवस्था बना दो अन्यथा मै अत्यन्त दीन अवस्था को प्राप्त हो जाऊंगी।

वज्रबाहु : ठीक है पुत्र ! तुम और बहू श्रीमती शीघ्र वहाँ जाओ और राज्य की सुयोग्य व्यवस्था बनाओ।

(वे लोग पुण्डरीकपुर के लिए रवाना होते हैं। बीच में जंगल में एक दिन पड़ाव डाला तो वहाँ संयोगवश इन दोनों ने युगल मुनिराज को आहार देकर असीम पुण्य संचय किया। अपने वृद्ध कंचुकी से वज्रजंघ को ज्ञात हुआ कि ये दोनों मुनि आपके ही अंतिम युगलिया पुत्र हैं तब उन्हें और अधिक स्नेह हो गया पुनः ऋद्धिधारी उन मुनियों से इन लोगों ने धर्म का उपदेश सुना और अपने भव- भवान्तर सुनकर आगे चलते हुए पुण्डरीकपुर पहुँच गए)

(सप्तम दृश्य)

वज्रजंघ : (चक्रवर्ती राजदरबार में) इस विशाल साम्राज्य के सुयोग्य मंत्रीगण! आप सबके लिए यह राजा पुण्डरीक चक्रवर्ती सम्राट के स्थान पर हैं एवं माता लक्ष्मीमती राजमाता हैं इनकी आज्ञा से आपको राज्य संचालन करना है।

मंत्रिगण : ठीक है, जामाता साहब ! हम आपकी बनाई व्यवस्था का पूरी तरह पालन करेंगे। किन्तु यदि आप कुछ दिन यहाँ रहकर हमारा मार्गदर्शन करें तो हम धन्य हो जाएंगे।

वज्रजंघ : प्रियजनों ! मैं आपके वचनों का सम्मान करता हूँ और आप लोगों से यह वायदा करता हूँ कि समय-समय पर यहाँ आकर राज्यव्यवस्था को अवश्य देखा करूँगा।

(सारी व्यवस्था बनाने के बाद वज्रजंघ अपनी सास और भाभी (साले की पत्नी) आदि को सांत्वना देकर अपने नगर वापस चले आए।

अनन्तर एक दिन राजा वज्रजंघ अपने शयनागार में सो रहे थे। उस दिन कर्मचारियों ने उनके कमरे में खूब सुगंधित धूप जलाई किन्तु धुंआ निकलने का रास्ता खिड़कियाँ खोलना भूल गये।

(शयनागार का दृश्य, रात्रि का अन्धकार है और पति पत्नी दोनों घबराहट में करवटें बदल रहे हैं कि अकस्मात् दम घुट जाने से दोनों की मृत्यु हो गई। पात्रदान के प्रभाव से वे मरकर उत्तम भोगभूमि में आर्य और आर्या के रूप में उत्पन्न हो गये।)

४. भोगभूमि में आर्य

मंच पर एक सामूहिक गीत

भोगभूमि का दृश्य, दश प्रकार के कल्पवृक्ष लगे हुए हैं और यत्र-तत्र नर-नारी मनोरंजन करते हुए भ्रमण कर रहे हैं।

(डांडिया नृत्य में एक बड़ा समूह उपस्थित करें)

(प्रथम दृश्य)

भोगभूमि में माता के गर्भ से बेटा-बेटी का युगल जन्म एक बार ही होता है और उनके जन्म लेते ही माता-पिता की छींक और जंभाई आकर मृत्यु हो जाती है।

(इस प्रकार अत्यन्त सुखों से भरे हुए उस उत्तरकुरूक्षेत्र में श्रीमती और वज्रजंघ के जीव "आर्य" और "आर्या" के रूप में उत्पन्न हुए पुनः वे दोनों पति-पत्नी की तरह रहने लगे।)

(किसी समय वज्रजंघ आर्य अपनी स्त्री के साथ कल्पवृक्षों की शोभा निहार रहा था)

आर्य : देवी ! ये कल्पवृक्ष कितने सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं, वास्तव में भोगों की भूमि होने के कारण इसका भोगभूमि नाम सार्थक है।

आर्या : (प्रसन्न मुद्रा में) सच कह रहे हैं आप ! मन तो करता है कि दिन-भर बैठी-बैठी इन कल्पवृक्षों की सुन्दरता को निहारती रहूँ।

आर्य : (स्त्री का हाथ थामते हुए) प्रिये ! मैं तो बस इतना जानता हूँ कि ये सब वैभव, ये सारी सुन्दरता जो भी कुछ है, आपका साथ होने के कारण इनकी सुन्दरता मुझे अधिक लुभा रही है।

आर्या : (धीरे से हंसते हुए) प्राणनाथ ! आप ऐसी बात कहकर मुझे लज्जित न करें। चलिए स्वामी ! उस दीपांग कल्पवृक्ष के पास कुछ देर बैठते हैं।

(दोनों दम्पत्ति दीपांग कल्पवृक्ष के पास पहुँचकर बैठने ही वाले थे कि उनकी दृष्टि आकाश में अचानक हुए अलौकिक प्रकाश की ओर गई)

आर्या : (बैठते हुए) स्वामी ! देखो न ! ये प्रकाश कैसा ! ऐसा अपूर्व तेज

तो मैने कभी नहीं देखा !

आर्य : (समझाते हुए) घबराओ मत देवी ! अभी सब पता चल जाएगा।

(कुछ ही क्षण में उन्हें सूर्यप्रभ देव का विमान दिखता है जिसे देखते ही दोनों को अपने पूर्व भव का स्मरण हो आया। वे दोनों वैराग्य को प्राप्त हो गए)

(अभी वे दोनों संसार के स्वरूप का चिन्तन कर ही रहे थे कि अकस्मात् उन्होंने आकाशमार्ग से आते हुए दो चारणऋद्धिधारी मुनियों को देखा)

आर्य-आर्या : (हर्ष से गदगद होकर अपने स्थान से उठते हुए) जय हो ! जय हो ! चारणऋद्धिधारी महामुनिराजों की जय हो !

(वज्रजंघ ने अपनी स्त्री सहित दोनों मुनियों को अर्घ्य चढ़ाया और नमस्कार किया उस समय उसके नेत्रों से हर्ष के अश्रु निकल रहे थे मानो वे मुनिराज के चरणों का प्रक्षाल ही कर रहे हों)

(दोनों मुनि आर्य और आर्या को आशीर्वाद प्रदान कर योग्य स्थान पर यथाक्रम बैठ गए पुनः वज्रजंघ ने पूछा)

वज्रजंघ आर्य : हे भगवन् ! आप कौन हैं ? कहाँ से आए हैं और आपके यहाँ आने का क्या कारण है ?

आर्या : (बीच में ही) स्वामी ! आप तो इतने व्याकुल हो रहे हैं कि एक साथ कई प्रश्न पूछ लिये।

आर्य : हाँ देवी ! पता नहीं क्यों ? मुझे इन मुनियों के बारे में सब कुछ अतिशीघ्र जानने की तीव्र इच्छा है। (पुनः मुनियों की ओर देखते हुए) हे प्रभो ! आपके दर्शन से मेरे हृदय में मित्रता का भाव उमड़ रहा है, मेरा मन मयूर बहुत ही प्रसन्न हो रहा है। (एक क्षण रूककर) स्वामी ! मुझे ऐसा लगता है कि आप मेरे परिचित बन्धु हैं।

(आर्य के प्रश्न समाप्त होते ही दोनों में ज्येष्ठ मुनि अत्यन्त वात्सल्य भाव से कहना प्रारम्भ करते हैं)

मुनि : हे आर्य ! क्या तुम्हें याद है कि आज से दो भव पूर्व तुम विद्याधर राजा महाबल थे और मैं तुम्हारा स्वयंबुद्ध नाम का मंत्री।

एक बार मैने तुम्हें सम्यग्दर्शन ग्रहण कराया था। जिसके फलस्वरूप तुम मरकर ललितांग देव हुए थे।

आर्य : (कुछ याद करते हुए) - हाँ, हाँ याद आ गया ! स्वामी ! मुझे सब कुछ याद आ गया। भगवन् ! एक बात बताइए कि मैं तो मरकर ललितांग देव हो गया था किन्तु आपने कौन सी गति प्राप्त की थी?

मुनि : हे भव्य ! मैंने उस भव में तुम्हारे वियोग से दुःखी होकर दीक्षा ले ली थी और समाधिपूर्वक मरण करके सौधर्म स्वर्ग में मणिचूल नाम का देव हुआ था।

आर्य : स्वामी ! उस देवपर्याय के बाद का इतिहास बताने की कृपा करें, मुझे आपके बारे में सुनना अच्छा लग रहा है।

मुनि : भव्यात्मन् ! वहाँ से च्युत होकर मैं जम्बूद्वीप की पुण्डरीकिणी नगरी में राजा प्रियसेन की महारानी सुन्दरी देवी के प्रीतिंकर नाम का बडा पुत्र हुआ हूँ। (दूसरे मुनि की ओर इशारा करते हुए) और यह महातपस्वी प्रीतिदेव मेरा छोटा भाई है।

आर्य : (उत्सुकता से) - गुरूवर ! आपको यह दिव्य ऋद्धि आदि कैसे प्राप्त हुई ?

मुनि : वत्स ! हम दोनों भाइयों ने स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के पास दीक्षा लेकर तपोबल से अवधिज्ञान और आकाशगामिनी चारण ऋद्धि प्राप्त की है।

आर्य : महात्मन् ! आप यहाँ तक किस इच्छा से आए ?

मुनि : हे आर्य ! हमने अपने अवधिज्ञान से जान लिया था कि आप यहाँ उत्पन्न हुए हैं चूंकि आप हमारे परम मित्र थे इसलिए आपको समझाने के लिए हम लोग यहाँ आए हैं।

आर्य : मुनिवर ! फिर तो आप अपने अवधिज्ञान से मुझे यह भी बता दीजिए कि मैं किस पुण्यकर्म के कारण इस भोगभूमि में उत्पन्न हुआ हूँ ?

मुनि : हे भव्य ! केवल पात्रदान के प्रभाव से ही तूने इतनी अच्छी गति प्राप्त की है।

आर्य : लेकिन भगवन् ! उस समय मुझे सम्यग्दर्शन था कि नहीं ?

मुनि : यही तो बात है प्रियवर ! निर्मल सम्यग्दर्शन होने पर तो तुम इससे भी अच्छी गति को प्राप्त कर लेते।

आर्य : वास्तव में सम्यग्दर्शन कितना महान है।

मुनि : हाँ वत्स ! यह सम्यग्दर्शन सर्वश्रेष्ठ है तथा स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को भी प्रदान करने वाला है। यही सम्यग्दर्शन हम तुम्हें देने की इच्छा से यहाँ आए हैं। इस सम्यग्दर्शन की महिमा को तो शास्त्रों में बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जैसे कि कहा भी है -

मोक्ष महल की परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा ।
सम्यक्ता न लहे सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ।।

अर्थात् मोक्ष रूपी महल में पहुँचने की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है इसके विना ज्ञान और चारित्र सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं हो सकते हैं अतः सम्यग्दर्शन अवश्य धारण करना चाहिए।

आर्य : भगवन् ! यह सम्यग्दर्शन प्राप्त कैसे होता है ?

मुनि : सच्चे देव, शास्त्र, गुरू की श्रद्धा करना ही सम्यग्दर्शन है, वत्स !

आर्य : गुरूवर ! क्या आप सम्यग्दर्शन के वारे में और भी कुछ बताएंगे?

मुनि : भव्य प्राणी ! जो इस सम्यग्दर्शन को क्षण भर के लिए भी धारण कर लेता है वह इस संसार रूपी महासमुद्र को चुल्लू भर जल के समान छोटा कर लेता है।

आर्य : स्वामी ! आज आप मुझे सम्यग्दर्शन दे ही दीजिए।

(आर्य-आर्या मुनि से सम्यग्दर्शन धारण करते हैं)

(वज्रजंघ का जीव प्रेम के वशीभूत हो लगातार मुनि के चरण कमलों को निहार रहा है पुनः कुछ क्षण पश्चात् वे दोनों मुनि जाने को उत्सुक हुए)

आर्य-आर्या : (प्रणाम करते हुए) गुरूवर ! भूयात्पुनर्दर्शनम्।

दोनों मुनि : तथास्तु ! वत्स ! कभी भी सम्यग्दर्शनरूपी धर्म को मत भूलना।

(दोनों गगनगामी मुनि आकाशमार्ग से विहार कर गए)

(मुनियों के जाने से आर्य कुछ क्षण दुःखी हुआ पुनः आर्या से

बोला)

आर्य : प्रिये ! न जाने क्यों ! इन मुनियों के चले जाने से मेरा मन बड़ा दुःखी हो रहा है। समझ में नही आ रहा है कि ऐसा क्यों हो रहा है?

आर्या : दुःखी मत होइए नाथ ! पूर्व सम्बन्धों के कारण ऐसा हो रहा है। कोई बात नहीं स्वामी ! किसी दिन उन मुनियों के दर्शन पुनः होंगे।

(आर्य यह सुनकर कुछ सन्तुष्ट हुआ पुनः बोला)

आर्य : देवी ! भले ही उनके चले जाने से कष्ट हो रहा है लेकिन उनका समागम भी तो कितना सुखद था। आज हमें उनसे सम्यग्दर्शन रूपी अमूल्य निधि प्राप्त हुई है।

प्रिये! वास्तव में संसार में भाई और गुरू ये दोनों ही मनुष्यों की प्राप्ति के लिए हैं।

आर्या : लेकिन नाथ ! भाई तो इसी जन्म का साथी होता है।

आर्य : बहुत ठीक कहा तुमने प्राणप्रिये ! भाई तो मात्र इसी जन्म के साथी होते हैं जबकि गुरू जन्म-जन्म के मित्र हो जाते हैं।

अब देखो न ! स्वयंबुद्ध गुरू ने मुझे तीसरे भव में भी सम्बोधन प्रदान किया था और इस भव मे भी मुझे सम्यग्दर्शन प्राप्त कराया है। (हाथ जोड़कर) हे प्रभु ! जब तक मुझे मोक्ष न मिले, इसी प्रकार गुरू मुख से सम्बोधन प्राप्त करता रहूँ।

(दोनों पति-पत्नी शुभ भावनाओं को भाते हुए सुखपूर्वक अपनी आयु व्यतीत करने लगे पुनः अन्त में वह वज्रजंघ का जीव आर्य ऐशान स्वर्ग में अद्भुत कान्तिधारक देव हुआ और आर्या श्रीमती भी सम्यग्दर्शन के प्रभाव से स्त्रीलिंग का छेदकर उसी ऐशान स्वर्ग में उत्तम देव हुई।)

५. श्रीधर देव

मंच पर सामूहिक नृत्य-

(स्वर्ग का दृश्य- इन्द्रसभा लगी हुई है, एक अप्सरा नृत्य कर रही है।)

(ऐशान स्वर्ग में एक नए देव कुमार का जन्म होने वाला है, बाकी देव आज काफी खुश नजर आ रहे हैं, एक अप्सरा ने प्रश्न किया)

अप्सरा : हे देव ! आज कुछ खास बात है क्या ?

एक देव : क्यों! तुम ऐसा क्यों पूछ रही हो ?

अप्सरा : मैं देख रही हूँ कि आज सभी देवगण बड़े प्रसन्न हैं।

देव : सुमुखी ! प्रसन्न तो हम सब रोज ही रहते हैं।

अप्सरा : फिर भी देवराज ! आज की प्रसन्नता में कुछ न कुछ राज अवश्य है। (उंगली से इशारा करते हुए) देखो न ! ये कुछ देव किसी कमरे की सजावट में लगे हुए हैं।

देव : अच्छा तो तुम्हारा इशारा इनकी तरफ है।

अप्सरा : देवराज ! कृपया बताइये न ! आज कौन आने वाला है ?

देव : सुनो देवी ! आज यहाँ एक नए देव का आगमन होने वाला है।

अप्सरा : अच्छा, तो ये बात है ! लेकिन देवराज ! यहाँ तो रोज ही किसी न किसी देव इन्द्र का जन्म होता है तब तो ये सजावट आदि नहीं होती !

देव : हाँ सुमुखी ! तुमने ठीक कहा है। ये देव कोई साधारण देव नहीं हैं, ये बहुत ही विशेष हैं।

अप्सरा : अच्छा ! क्या इनकी विशेषता के बारे में आप मुझे बताएंगे ?

देव : हाँ हाँ क्यों नहीं ! ये देव आज से पाँचवे भव में भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर होने वाले हैं।

अप्सरा : वाह ! फिर तो आज वास्तव में बहुत खुशी का दिन है।

(खुश होकर नाचने लगती है)

(देवगण उपपाद शैय्या को सुसज्जित कर रहे हैं, जिस पर देव कुमार जन्म लेगें।)

(दूसरा दृश्य)

(एक शैय्या पर एक नवयुवक सो रहा है शैय्या के आस-पास देवगण हाथ जोड़कर खड़े हैं।)

वह युवक आंखे खोलता है और बोलता है "ऊँ नमः सिद्धेभ्यः" पुनः णमोकार मंत्र का उच्चारण करके देवों से प्रश्न करता है —

श्रीधर देव : ओह ! मैं कहाँ आ गया ? आप लोग कौन हैं और मुझे नमस्कार क्यों कर रहे हैं ?

देव : भव्यात्मन् ! आप ऐशान नामक द्वितीय स्वर्ग में हैं हम लोग आपके साथी देव हैं। चलिए, आपको स्वर्ग की प्रत्येक वस्तुस्थिति से परिचित करा दें।

श्रीधर देव : चलिए बन्धुवर ! जैसी आपकी इच्छा !

(सभी देवगण श्रीधर देव को स्वर्ग की हर चीज दिखाते हैं श्रीधर देव प्रसन्न हो रहे हैं पुनः कुछ देवांगनाओं को श्रीधर देव के पास लाते हैं)

देव : मित्रवर ! ये देवांग़नाएँ आपकी सेवा करेंगी तथा आपका मनोरंजन भी करेंगी।

दूसरा देव : भाई ! आप किसी प्रकार की चिन्ता मत करिएगा। हम सब आपके साथ ही हैं।

(इतना कहकर सभी देवगण अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं। श्रीधर देव भी अपने भवन में चले जाते हैं)

(तृतीय दृश्य)

(श्रीधर देव विचारमग्न हैं तभी एक देव आकर प्रश्न करता है)

देव : देवाधिदेव ! आप क्या सोच रहे हैं कहीं आप.....

श्रीधर देव : (बीच में ही) नहीं नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे अभी-अभी अपने अवधिज्ञान के द्वारा यह मालूम हुआ है कि हमारे पूर्व भव के गुरू इस समय श्रीप्रभ नामक पर्वत पर विराजमान हैं।

देव : (आश्चर्य से) पूर्व भव के गुरू ? मैं कुछ समझा नहीं।

श्रीधर देव : चार भव पहले जब मैं विद्याधर था तब उन्होंने ही मुझे सम्यग्दर्शन

ग्रहण कराया था।

देव : अच्छा ! तब तो आपको उनके दर्शनार्थ अवश्य जाना चाहिए।

श्रीधर देव : हाँ ! मैं अवश्य जाऊँगा ! मुझे यह भी मालूम हुआ है कि गुरुवर को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई है।

देव : अच्छा ! यह तो "सोने में सुगन्धि" वाली बात हो गई।

(श्रीधर देव पूजा के लिए अच्छी-अच्छी सामग्री लेकर गुरू के सम्मुख पहुँचा, उनकी बहुत ही भक्ति भाव से पूजा की और नमस्कार किया। मुनिवर ने उन्हें धर्म का स्वरूप बताया)

प्रीतिंकर मुनिराज :भव्यात्मन् ! "उत्तमे सुखे धरति इति धर्मः" अर्थात् जो संसारी प्राणियों को संसार के दुःखो से निकालकर उत्तम सुख में पहुँचा दे उसे धर्म कहते हैं।

(इत्यादि प्रकार से गुरू उपदेश सुनकर श्रीधर देव प्रसन्न हुआ पुनः पूछने लगा)

श्रीधरदेव : हे प्रभो ! मेरे महाबल के भव में चार मन्त्रियों में से आप तो केवलज्ञानी महात्मा बन गए बाकी तीन मिथ्यादृष्टि मंत्री इस समय कहाँ है ? उन्हें किस गति की प्राप्ति हुई है ?

प्रीतिंकर मुनिराज :हे भव्य ! जब तू महाबल का शरीर छोड़कर स्वर्ग में चला गया तब मैंने रत्नत्रय को प्राप्त कर दीक्षा धारण कर ली और वे तीनों मंत्री कुमरण से मरकर दुर्गति में चले गए।

श्रीधरदेव : ओह ! ये तो बड़ा बुरा हुआ।

प्रीतिंकर मुनिराज :बुरा नहीं हुआ देवेन्द्र ! उन्हें उनके कर्मों का फल तो मिलना ही था।

श्रीधरदेव : हाँ स्वामी, आप ठीक कह रहे हैं।

प्रीतिंकर : हाँ, तो मैं बता रहा था कि तीनों में से महामति और संभिन्नमति ये दो निगोद में चले गए जहाँ कि एक श्वांस में अठारह बार जन्म-मरण करना पड़ता है।

श्रीधरदेव : सचमुच ! सम्यग्दर्शन की विराधना करने वालों की क्या गति नहीं होती !

प्रीतिंकरस्वामी : और देवराज ! आपका शतमति मंत्री मिथ्यात्व के कारण नरक में

गया है।

श्रीधरदेव : नरक में तो उसे बहुत दुःख उठाने पड़ रहे होंगे ?

प्रीतिंकर : हाँ श्रीधर देव ! नरक के दुःखों का वर्णन करना हर एक के बस की बात नहीं है वहाँ तो असंख्यातों दुःख सहने पड़ते हैं।

श्रीधरदेव : स्वामी ! मैं निगोद में जाकर उन दो मंत्रियों को सम्बोधित तो कर नहीं सकता हूँ, क्या मैं द्वितीय नरक में पड़े शतमति को कुछ समझा सकता हूँ ?

प्रीतिंकर स्वामी : हाँ हाँ भव्यात्मन् ! क्यों नहीं ! तुम वहाँ अवश्य जाओ और उसे समझा-बुझाकर सम्यग्दर्शन ग्रहण कराओ।

श्रीधरदेव : जैसी आपकी आज्ञा, गुरूवर !

(श्रीधर देव सर्वज्ञदेव प्रीतिंकर की आज्ञा लेकर दूसरे नरक मे पहुँचता है और वहाँ शतमति के पास जाकर कहता है)

श्रीधर देव : हे मूर्ख शतबुद्धि ! क्या तू मुझ महाबल को जानता है? उस भव में तूने अनेक मिथ्या नयों का आश्रय लिया था जिसके फलस्वरूप आज तू इस नरक में दुःख उठा रहा है।

शतबुद्धि : (दुःखी होते हुए) हाँ! मैं बहुत दुःखी हूँ। मैंने उस समय बहुत गलत काम किया था। अब आप ही मुझे इन दुःखों से बचा सकते हैं।

श्रीधर देव : हाँ शतबुद्धि! मैं इसीलिए तो यहाँ आया हूँ। अब तुम जीवन में सम्यग्दर्शन को धारण करो तभी तुम्हारा कल्याण सम्भव है।

(शतबुद्धि ने नम्रतापूर्वक उस श्रीधरदेव से सम्यग्दर्शन प्राप्त किया और बार-बार उनके चरणों में नमस्कार करने लगा)

(श्रीधरदेव वहाँ से वापस स्वर्गलोक में चले जाते हैं)

(शतबुद्धि नारकी का जीव आयु के अन्त में नरक से निकलकर विदेह क्षेत्र के रत्नसंचय नगर में महीधर चक्रवर्ती की महारानी सुन्दरी के जयसेन नामक पुत्र हुआ।)

(पुत्र के जन्म पर खूब उत्सव मनाया जा रहा है सबको मुंहमांगा फल मिल रहा है राजा-रानी बहुत खुश हैं)

(धीरे-धीरे बालक बड़ा हुआ और जब युवावस्था को प्राप्त हुआ तो राजा ने योग्य कन्या के साथ उसका विवाह निश्चित कर दिया।

इधर जयसेन के विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं उधर स्वर्ग में श्रीधरदेव को अपने अवधिज्ञान से मालूम हो गया तो वे स्वर्ग से उसे समझाने के लिए आए)

श्रीधर देव : हे कुमार जयसेन! ये आप क्या कर रहे हैं? क्या आपको याद नहीं आप पूर्व भव में नारकी थे और मैने आपको सम्बोधित किया था।

(जयसेन को उसी समय जातिस्मरण के द्वारा अपने पूर्वभव की याद आ जाती है)

जयसेन : हाँ हाँ देवराज! मुझे सब कुछ याद आ गया। मैं वास्तव में नरक के दुःखो को भूल गया था। यहाँ आकर मैं यहाँ के वैभव में ही फंस गया था।

श्रीधरदेव : वत्स! अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम इस मोहजाल को छोड़कर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करो। (इतना कहकर श्रीधरदेव वापस स्वर्ग चले जाते हैं।)

(जयसेन श्रीधर देव की बात मान लेते हैं और उस विवाह से इन्कार कर देते हैं। माता-पिता आदि सब लोग समझा रहे हैं लेकिन कोई असर नहीं हो रहा है)

(जयसेन उसी समय यमधर मुनिराज के पास दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करने लगा और आयु के अन्त में मरकर ब्रह्मस्वर्ग में इन्द्र हो गया)

(अनन्तर एक दिन अपने अवधिज्ञान से उस ब्रह्मेन्द्र ने अपने कल्याणकारी मित्र के बारे में जान लिया पुनः स्वर्ग से आकर उनकी पूजा की)

उधर श्रीधर देव के गले की माला मुरझाने लगी अर्थात् उनकी आयु क्षीण होने लगी। वहाँ से निकलकर श्रीधर देव जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में स्थित सुसीमा नगरी में सुदृष्टि राजा की सुंदरनन्दा नाम की रानी के गर्भ में आ गए।

६. राजा सुविधि

मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य

स्थान - (सुसीमा नगरी के राजा सुदृष्टि का राजमहल)

राजा सुदृष्टि का दरबार लगा हुआ है। महाराज मन्त्रीगणों के साथ वार्ता में मग्न हैं। अचानक एक दासी प्रसन्न मुद्रा में राजदरबार में भागती हुई आती है।

दासी : महाराज की जय हो! महाराज की जय हो! बधाई हो महाराज! महारानी सुंदरनंदा ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है।

(महाराज प्रसन्न हो अपने गले का हार उतार कर दासी को दे देते हैं और दासी महाराज की जयकार करती हुई लौट जाती है)

महाराज : (अपने मंत्रीगणों से) मंत्री महोदय! सारे नगर में खुशियाँ मनाई जाएं, हम आज बहुत प्रसन्न हैं। राजकोष खोल दो, कोई भी खाली हाथ न जाने पाए, सबको मुंहमांगा धन बांटा जाए।

मंत्रीगण : जो आज्ञा महाराज! (सारे राज्य में खुशियाँ मनाई जा रही हैं, सब तरफ उल्लास का वातावरण है।)

(दूसरा दृश्य)

(राजा सुदृष्टि एवं रानी सुंदरनन्दा सिंहासन पर विराजमान हैं, पास में ही बालक सुविधि खेल रहा है, दो चार बालक साथ में खेल रहे हैं। माता-पिता देख-देखकर प्रसन्न हो रहे हैं।)

राजा : देवी! वास्तव में हमारा यह पुत्र उत्तम लक्षणों से युक्त है। देखो तो, उसकी चेष्टाएं एवं बाल क्रीड़ा देखकर ऐसा लगता है कि यह कोई होनहार जीव है।

रानी : हाँ महाराज! आप सही कह रहे हैं। इसके शुभ लक्षणों के कारण ही कुटुम्बीजनों के द्वारा रखा गया इसका 'सुविधि' नाम सार्थक ही है।

(इस प्रकार माता-पिता के मन को आनन्दित करता हुआ वह सुविधि कुमार बाल्यावस्था में प्रवेश करता है और समीचीन धर्म को धारण करता हुआ युवावस्था में प्रवेश करता है)

(अंतःपुर का दृश्य)

(युवा सुविधि कुमार का प्रवेश) माता-पिता सिंहासन पर विराजमान हैं, पास में कुछ फोटुएं रखी हैं।

सुविधि कुमार : प्रणाम पिताश्री! प्रणाम माताश्री! आपने मुझे याद किया। कहिए मेरे लिए क्या आज्ञा है?

पिता सुदृष्टि : आओ पुत्र! चूंकि अब तुम युवावस्था को प्राप्त हो चुके हो अतः हम दोनों ने निर्णय किया है कि अब तुम्हारा विवाह शीघ्र सम्पन्न कर दिया जाए।

सुंदरनंदा : हाँ बेटे! हर माता पिता की तरह हमारी भी प्रबल इच्छा है कि शीघ्र ही इस राजघराने में एक प्यारी सी बहू आ जाए, अतः हमने महाराजा अभयघोष जो कि चक्रवर्ती हैं उनकी प्यारी पुत्री मनोरमा के साथ तुम्हारा पाणिग्रहण संस्कार करने का विचार किया है और इस सम्बन्ध में हम तुम्हारी राय जानना चाहते हैं।

(पुत्र के हाथ में मनोरमा की फोटो देते हैं)

सुविधि कुमार : हे तात्! हे माता! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आपने जो निर्णय लिया है वह उचित ही होगा।

(कुछ दिनों के अन्दर ही शुभ मुहूर्त में युवराज सुविधि कुमार का चक्रवर्ती सम्राट अभयघोष की राजपुत्री मनोरमा के साथ विवाह हो गया। विवाह के पश्चात् भोगों को भोगते हुए, धर्म, अर्थ एवं काम पुरूषार्थों का सेवन करते हुए उन दम्पत्तियों का काफी समय व्यतीत हो गया। उधर राजा सुदृष्टि अपने सुपुत्र को सभी प्रकार से योग्य एवं संचालन में निष्णात जानकर उनका राज्याभिषेक करने का विचार करते हैं। मन्त्री आदि से परामर्श कर, द्वारपाल को राजपुरोहित को बुलाने की आज्ञा देते हैं और शुभमुहूर्त में युवराज का राजतिलक होता है।)

राजदरबार का दृश्य

(राजा सुदृष्टि, मंत्रीगण आदि युवराज को राजसिंहासन पर बैठाकर राजतिलक कर रहे हैं।)

राजा : हे पुत्र! अब तुम संचालन करने हेतु सब प्रकार से निष्णात हो चुके हो अतः आज मैं इस राज्य का कार्यभार तुम्हें सौंपकर अब अपना समय श्री जिनेन्द्र देव की अर्चना में व्यतीत करना चाहता हूँ।

एक मंत्री : महाराज! आपने उत्तम विचार किया है किन्तु आज यह सोचकर

कि आप हमें छोड़ रहे हैं हमारा मन अत्यन्त विषादयुक्त हो रहा है और हमारे युवराज आपके समान ही योग्य एवं राज्यसंचालन में निष्णात हैं यह सोचकर हमारा मन प्रसन्नता से अभिसिंचित हो रहा है।

राजा : मन्त्रिवर! यह हमारा पुत्र हमसे भी अधिक अच्छे रूप से राज्य का संचालन करेगा। आप बिल्कुल निश्चिन्त होकर युवराज का राज्य संचालन में हाथ बटावें।

मंत्रीगण : जो आज्ञा महाराज!

(पुनः महाराज तिलक लगाकर युवराज का राजतिलक कर देते हैं और युवराज के मस्तक पर अपना मुकुट पहना देते हैं। सर्वत्र राज्यसभा में महाराजा सुदृष्टि एवं नये महाराजा सुविधि कुमार की जय-जयकार होती है।)

(राज्यसभा में नृत्यांगना द्वारा नृत्य)

(महाराजा सुविधि कुमार कुशलतापूर्वक साम, दाम, दण्ड, भेद इन चारों नीतियों से प्रजा का पालन करते हुए राज्यसुख में निमग्न हैं तभी दासी आकर पुत्र जन्म की सूचना देती है।)

दासी : बधाई हो महाराज! बधाई हो! महारानी मनोरमा ने एक सुन्दर सलोने पुत्र को जन्म दिया है, चांद का टुकड़ा है हमारा राजकुमार। आज तो मैं ढेर सारा इनाम लूंगी।

राजा सुविधि कुमार: हाँ हाँ क्यों नहीं। तुम वास्तव में ही इस इनाम की पात्र हो (अपने गले का हार उतार कर दे देते हैं।) (पुनः) तुम ही क्या, आज तो पूरे राज्य में खुशियां मनाने का दिन है, आज सभी को मुंहमांगा धन मिलेगा।

(सारे पुरवासी प्रसन्न हो रहे हैं और आपस में वार्ता कर रहे हैं।)

एक पुरूष : अरे भाई! अपना कुमार देखो तो कितना सुन्दर है, 'केशव' नाम रखा है महाराज ने उसका।

दूसरा : अरे भईया! क्यों नहीं सुन्दर होगा, आखिरकार अपने महाराज एवं महारानी भी तो सर्वांग सुन्दर हैं।

एक स्त्री : अरे भाइयों! कहीं नजर ना लगा देना हमारे कुमार को। अभी मैं राजमहल जाकर उसे काला टीका लगाकर आती हूं। सचमुच कहीं उसे नजर ना लग जाए।

(बन्धुओं! यह वही ईशान स्वर्ग का श्रीप्रभ देव का जीव है जो 'केशव' के रूप में उत्पन्न हुआ है और राजा सुविधि का उसपर अत्यधिक प्रेम है। वास्तव में पुत्र ही पिता के लिए अतीव स्नेह बंधन का कारण होता है पुनः यदि वह पूर्व भवों में प्रिय पत्नी के रूप में रहा हो तो भला उसके प्रति प्रेम का क्या कहना? यही कारण था कि राजा सुविधि का अपने पुत्र 'केशव' के प्रति अप्रतिम स्नेह था।)

(और सुनो! वज्रजंघ राजा की पर्याय में वन में आहारदान के समय जो सिंह, नकुल, वानर और सूकर पशुओं ने दान की अनुमोदना से पुण्यसंचित कर भोगभूमि के सौख्य को पाया था पुनः वे चारों ही द्वितीय स्वर्ग में देव हुए और वहाँ आयु पूर्ण कर च्युत होकर उसी विदेह क्षेत्र में क्रम से वरदत्त, वरसेन, चित्रांगद और प्रशांतमदन नाम के राजपुत्र हो गये, ऐसा अचिन्त्य इस धर्म का माहात्म्य है।)

एक दिन राजा सुविधि अपने राजदरबार में बैठे थे तभी द्वारपाल आकर सूचना देता है -

द्वारपाल : महाराज की जय हो। महाराज हमारे भाग्य जग गये हैं, चक्रवर्ती महाराज अभयघोष की राजधानी में भगवान विमलवाहन का समवसरण आया है। छहों ऋतुओं के फल-फूल एक साथ खिल रहे हैं, क्रूर पशु भी मैत्री भाव धारण कर रहे हैं।

एक मंत्री : हाँ महाराज! उस समवसरण का क्या कहना। महाराज और भी एक शुभ सूचना है वो जो हमारी महारानी के पिता और भाई हैं ना, वे सब उस समवसरण की वन्दना हेतु गये थे, उनके साथ हजारों राजा भी गये थे। उन्होने वहाँ भगवान की वन्दना भक्ति की और प्रभु का दिव्य उपदेश सुनने लग गये और महाराज फिर जानते हैं क्या हुआ?

राजा : क्या हुआ मन्त्रिवर? शीघ्र कहो।

मंत्री : स्वामिन्! उपदेश सुनते-सुनते उन्हें वैराग्य हो गया और चक्रवर्ती अभयघोष ने वरदत्त आदि चार राजा एवं अठारह हजार अन्य राजा तथा अपने पांच हजार पुत्रों के साथ दैगम्बरी दीक्षा धारण

कर ली।

राजा : (आश्चर्य चकित होकर) ओह! आश्चर्य है। सचमुच धर्म का माहात्म्य अचिन्त्य है।

(राजदरबार समाप्त होता है, महाराज सुविधि कुमार अपने अंतःपुर की ओर प्रस्थान करते हैं।)

(तृतीय दृश्य)

राजा सुविधि : (अन्तःपुर में प्रवेश कर) महारानी! प्रिये मनोरमा! कहाँ हो तुम?

मनोरमा : क्या हुआ स्वामी? आज आपके मुखमण्डल पर आश्चर्य के भाव? कोई अनहोनी घटना घट गयी क्या?

राजा : हाँ रानी! बात ही कुछ ऐसी है तुम भी सुनोगी तो आश्चर्यचकित रह जाओगी। चक्रवर्ती सम्राट अभयघोष की राजधानी में भगवान विमलवाहन का समवसरण आया हुआ है। बहुत से लोग उनके दर्शनार्थ जा रहे हैं।

मनोरमा : (बीच में ही) अच्छा! ये तो बड़ी प्रसन्नता की बात है।

(प्रसन्न हो जाती है)

राजा : अरे प्रिये! मेरी पूरी बात तो तुमने सुनी ही नहीं। उस समवसरण में तुम्हारे पिताश्री चक्रवर्ती सम्राट अभयघोष अठारह हजार राजा एवं अपने पांच हजार पुत्रों सहित उनके दर्शनार्थ गये थे और वहाँ वे सारे के सारे दिव्य उपदेश को सुन वैराग्य भाव को धारण कर दीक्षित हो दिगम्बर मुनि बन गये।

मनोरमा : ओह! यह क्या हुआ? (मोह के वशीभूत हो विलाप करने लगती है) हे पूज्य पिता! हे भ्राता! यह आपने क्या किया? आपने सम्पूर्ण राज्य को, सम्पूर्ण अन्तःपुर को एवं सम्पूर्ण प्रजा को कैसे अनाथ कर दिया? अब यह चक्ररत्न किसकी आज्ञा में रहेगा (पुनः जोर-जोर से रोने लगती है)

राजा : (सान्त्वना देते हुए) अरे प्राणबल्लभे! यह क्या कर रही हो? यह तो प्रसन्नता का विषय है कि सम्राट ने मोक्षपथ का पथिक बनने हेतु इस दिगम्बर वेष को धारण किया। उनके कारण तुम्हारा जन्म भी धन्य हो गया है। देखो! इस संसार में ये सुख, वैभव, स्त्री, कुटुम्ब कुछ संग नहीं जाना है मात्र एक जिनधर्म ही साथ जाएगा। प्रिये!

शोक छोड़ो। आओ। हम भी उन भगवान विमलवाहन के समवसरण में दर्शनार्थ चलते हैं।

(राजा-रानी अपने परिकर सहित समवसरण में पहुंचकर भगवान विमलवाहन की वन्दना, स्तुति एवं पूजा करके चक्रवर्ती महामुनि के चरणों में नमस्कार करते हैं। पुनः मनोरमा अपने पूज्य पिता के चरणों की वन्दना करके शोक, मोह छोड़कर हर्षितमना हो स्तुति करती है)

नोट : (इस स्थान पर समवसरण में अप्रतिष्ठित मूर्ति या फोटो रख सकते हैं किसी को मुनि नहीं बनाना चाहिए)

मनोरमा : हे भगवन्! आप धन्य हैं, आपने छह खण्ड के वैभव को, चक्ररत्न को एवं सर्व आरम्भ परिग्रह को छोड़कर अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए यह अर्हंतमुद्रा धारण की है। आपकी भक्ति करके मैं भी अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के पुरुषार्थ में लगा सकूं, ऐसी मुझे शक्ति प्राप्त हो मैं यही याचना करती हूँ।

(अनन्तर क्रम-क्रम से सभी भाइयों के चरणों में नमोस्तु करते हुए 'मानो आनन्दाश्रु से ही उनके चरणों का प्रक्षालन कर देगी' खुशी के आंसुओं से भरी आंखों से सभी के गुणों की स्तुति करके अपने कोठे में आकर बैठ जाती है राजा सुविधि भी मनोरमा के साथ अपने योग्य कोठे में बैठकर प्रभु का दिव्य उपदेश सुनते हैं पुनश्च रानी व परिकर सहित समवसरण की महिमा का गुणानुवाद करते हुए वापस आ जाते हैं)

एक दिन राजा सुविधि चिंतामग्न हो सोचते हैं -

राजा सुविधि : (एकान्त में सिंहासन पर विराजमान चिंतित मुद्रा में) अहो! आश्चर्य है! मेरे श्वसुर ने और मेरे चारों साथी राजाओं ने तथा मेरी पत्नी के पांच हजार भाइयों ने मुनि दीक्षा ले ली। उन्होंने एक क्षण में इतने विशाल चक्रवर्ती साम्राज्य को छोड़ दिया। मेरा राज्य तो उसके आगे बहुत ही अल्प है फिर भी मैं नहीं छोड़ पा रहा हूँ। जानता हूँ कि संसार, धन-वैभव, पुत्र, पत्नी सब क्षणभंगुर हैं पर क्या करूँ? वास्तव में राज्य को, रानी को एवं सब कुछ परिग्रह को छोड़ना सरल है मुझे कुछ भी कठिन नहीं लगता किन्तु मैं भला इस

'केशव' पुत्र का मोह कैसे छोड़ूँ? इसके स्नेहबंधन को छोड़ना ही आज मेरे लिए दुष्कर हो रहा है।

(इत्यादि प्रकार से चिंतन कर राजा येन केन प्रकारेण पुत्र मोह को कम करने की कोशिश करते हैं और इस श्रृंखला में क्रम-क्रम से ग्यारह प्रतिमा के स्थानों को प्राप्त कर क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार सम्यग्दर्शन से व्रतों की शुद्धता को प्राप्त हुए राजर्षि सुविधि ने बहुत काल तक मोक्षमार्ग की उपासना की। अनन्तर जीवन के अन्त में सर्व परिग्रह का त्यागकर दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली और समाधि पूर्वक शरीर का त्यागकर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र पद को प्राप्त कर लिया। पुत्र केशव ने भी निर्ग्रंथ दीक्षा ग्रहण कर आयु के अंत में शरीर को छोड़कर उसी सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद प्राप्त कर लिया।)

७. अच्युतेन्द्र

मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य

स्वर्ग का दृश्य - इन्द्रसभा में अप्सरा का नृत्य

(प्रथम दृश्य)

अच्युत स्वर्ग में इन्द्रगणों की सभा लगी हुई है और सभी देवता आपस में वार्ता कर रहे हैं। तभी -

एक इन्द्र : (अपने अवधिज्ञान से जानकर) अहो! धर्म की महिमा अपरम्पार है कि जहाँ मनुष्यलोक से प्राणी इस स्वर्ग लोक में आ जाता है।

दूसरा इन्द्र : क्या हुआ देव? अचानक यह आप धर्म की महिमा का वर्णन क्यों करने लग गये? क्या कोई नया समाचार है? पृथ्वीलोक में ऐसा क्या हुआ?

पहला इन्द्र : हाँ इन्द्र देव! बात ही कुछ ऐसी है आज हमारे इस स्वर्ग में धरती पर जन्म लेकर कुशलतापूर्वक राज्य संचालन कर, पुनः उत्कृष्ट जिनदीक्षा धारण कर समाधिमरण पूर्वक शरीर का त्याग करने वाला राजा सुविधि कुमार का जीव अच्युतेन्द्र के रूप में जन्म लेने वाला है।

एक अन्य इन्द्र : हे पुरन्दर! वैसे तो इस स्वर्ग में अनेक देव जन्म लेते रहते हैं पर कभी तो ऐसी चर्चा आपने नहीं की। इस देव में ऐसी क्या बात है जो आप उनका गुणानुवाद कर रहे हैं।

इन्द्राणी : हाँ देव! हमें भी जानने की जिज्ञासा है कि आखिर उन अच्युतेन्द्र में ऐसी क्या बात है।

इन्द्र : तो सुनो! मैं तुम सब को बताता हूँ उसकी विशेषता यह है कि अब से दो भव के पश्चात् दशवें भव में वह अच्युतेन्द्र जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के रूप में जन्म लेने वाले हैं।

सभी इन्द्र-इन्द्राणी: जय हो! जय हो! तीर्थंकर ऋषभदेव की जय हो। तब तो हम सबको मिलकर उस महान आत्मा के स्वागत करने हेतु प्रस्थान करना चाहिए।

एक इन्द्र : हाँ क्यों नहीं। हम सभी उस महापुरुष के स्वागतार्थ चलेंगे। सचमुच जिनधर्म की महिमा अपार है।

(सभी जयजयकार करते हुए प्रस्थान करते हैं)

(द्वितीय दृश्य)

सोलहवें स्वर्ग में अच्युत इन्द्र की उपपाद शैय्या फूलों से सुसज्जित है जिसके अन्दर इन्द्र (१६ वर्ष की अवस्था में) सो रहे हैं।

(बाजों की ध्वनि हो रही है, पुष्पवृष्टि हो रही है और देवगण जयजयकार करते हुए नमस्कार की मुद्रा में खड़े हुए हैं)

अच्युतेन्द्र : (शैय्या पर उठकर बैठ जाते हैं) ऊँ नमः सिद्धेभ्यः (ऐसा बोलते हुए हाथ जोड़कर पंच परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं) (पुनः आश्चर्य चकित होकर) ओह! मैं कहाँ आ गया? कौन हूँ मैं? ये सब जो मेरे चारों ओर खड़े जयजयकार कर रहे हैं, कौन हैं यह? इतना दिव्य वैभव, कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा?

सभी देवगण : स्वामिन्! हम सबका प्रणाम स्वीकार करें। आप यहाँ सोलहवें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र के रूप में जन्मे हैं।

अच्युतेन्द्र : (सोचने की मुद्रा में) (अवधिज्ञान द्वारा जानकर) ओह! अच्छा,अच्छा, मैं समझ गया । मैं पूर्व भव में राजा सुविधि कुमार था जिसका अपने पुत्र 'केशव' में अत्यधिक प्रेम था परन्तु आयु के अन्त में बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हुए समाधिपूर्वक मैंने शरीर त्याग किया था जिसके फलस्वरूप मैं इस अच्युत स्वर्ग में उत्पन्न हुआ हूँ।

देवगण : हे नाथ! आप पुण्यशाली जीव हैं, आपकी जय हो, देव! अब आप मंगल स्नान हेतु प्रस्थान करें और उसके पश्चात् जिनमन्दिर के दर्शनार्थ चलें।

अच्युतेन्द्र : अवश्य देव महाराज! मैं शीघ्र ही जिनमन्दिर के दर्शनार्थ तैयार होता हूँ।

(नहा धोकर उत्तम वस्त्र आभूषण धारण कर वे देव तैयार होकर अपने देव साथियों के साथ अपने विमान के जिनमन्दिर में प्रवेश कर भक्तिभाव से जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं, भक्तिपूर्वक स्तोत्र पाठ करते हैं, अनन्तर जिनविम्बों का अभिषेक-पूजन करते हैं (जिन मन्दिर का दृश्य दिखावें) पुनः स्वर्ग में वापस आते हैं)

(स्वर्ग का दृश्य)

एक देव : स्वामिन्! अब आप अपने वैभव का निरीक्षण करें।

अच्युतेन्द्र : ठीक है। मैं आपके साथ चलता हूँ।

देव : चलिए।

(उसके साथ चले जाते हैं।)

(इन देव की अणिमा, महिमा आदि आठ ऋद्धियां थीं। बाईस सागर प्रमाण इनकी आयु थी। इनके अधिकार में एक इंद्रक विमान, पैंतीस बड़े-बड़े श्रेणीबद्ध विमान, एक सौ तेईस प्रकीर्णक विमान ऐसे एक सौ उनसठ विमान थे। तैंतीस त्रायस्त्रिंत्रश देव पुत्र के समान थे। दस हजार सामानिक और ४० हजार आत्मरक्षक देव थे। तीन प्रकार की सभा में अन्तः परिषद् में एक सौ पच्चीस देव, मध्यम परिषद् में दो सौ पचास देव और बाह्य परिषद् में पांच सौ देव थे। चारों दिशाओं की रक्षा करने वाले चार लोकपाल थे)

(पुनः स्वर्ग का दृश्य)

देवों के साथ अपना वैभव देखते हुए-

देव : प्रभो! यह आपकी आठ महादेवियाँ हैं। त्रेसठ बल्लभिका देवियाँ हैं और एक-एक महादेवी ढ़ाई सौ-ढ़ाई सौ अन्य देवियों से सेवित हैं। प्रत्येक देवी अपनी विक्रिया से दश लाख चौबीस हजार सुन्दर स्त्री रूप बना सकती हैं।

सभी देवियाँ : स्वामी! आपको नमस्कार हो।

अच्युतेन्द्र : (मन में जिनेन्द्र देव को नमस्कार करते हुए) यह सब जिनमहिमा का सुफल है जो मुझे इतने दिव्य सुखों की प्राप्ति हुई है।

(देवियां स्वामी को नमस्कार कर अपने भवन की ओर प्रस्थान करती हैं और वह देव अच्युतेन्द्र को उनकी सेना, दिव्य सभा आदि दिखाने हेतु प्रस्थान करता है।)

इस अच्युतेन्द्र का इन्द्राणियों के साथ मानसिक मैथुन था, बाईस हजार वर्षों में एक बार मानसिक आहार लेते थे। ग्यारह महीने में एक बार स्वासोच्छ्वास लेते थे। शरीर की अवगाहना तीन हाथ प्रमाण थी।

(तृतीय दृश्य)

(इन्द्र अपनी इन्द्राणियों और अनेक परिकर देवों के साथ बैठे हैं)

(अप्सरा द्वारा देवसभा में नृत्य)

इन्द्र : हे इन्द्रों ! मध्यलोक में जन्म लेने वाले तीर्थंकर भगवान का पंचकल्याणक मनाने का पुण्य हमें प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप हम भी अपनी आत्मा को भगवान बनाने की दिशा में महान पुण्य को प्राप्त कर लेते हैं।

दूसरा इन्द्र : हाँ स्वामिन्! देखो ना। जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी वे तीर्थंकर जन्म के दश अतिशय, देवकृत १४ अतिशय और केवलज्ञान के१० अतिशय इस प्रकार ३४ अतिशय से सहित होते हैं।

इन्द्राणी : देवराज! तीर्थंकर शिशु का दर्शन मात्र ही हमारे चतुर्गति का नाश कर देता है।

सभी देव : उन तीर्थंकर भगवान की महिमा अकथनीय है।

(सभी इन्द्र इन्द्राणी आपस में तीर्थंकर भगवान का गुणानुवाद कर रहे हैं तभी -)

एक इन्द्र : देवराज! आष्टान्हिका महापर्व आ रहा है। हमें नंदीश्वर द्वीप में आष्टान्हिका पर्व मनाने हेतु चलना चाहिए।

अच्युतेन्द्र : हाँ महाराज! आपने अच्छा याद दिलाया। आप वहाँ चलने की तैयारी करें। हम सब वहाँ चलकर बावन जिनमन्दिरों में विराजमान जिनप्रतिमाओं का विशेष संगीत-नृत्य आदि से महापूजा-अभिषेक करेंगें।

इन्द्र : जो आज्ञा स्वामिन्! (चला जाता है)

(कुछ देर बाद पुनः आकर) हे नाथ! विमान तैयार हैं, दिव्य पूजन सामग्री आदि सब तैयार हैं। चलिए! नन्दीश्वर द्वीप की ओर प्रस्थान करिए। हम सब देवाधिदेव के दर्शन के लिए आतुर हैं।

अच्युतेन्द्र : चलो बन्धुओं! हम सब चलें और दर्शन-पूजन कर असीम पुण्य का संचय करें। (सभी प्रस्थान करते हैं)

(इस प्रकार से वह अच्युतेन्द्र स्वर्ग के दिव्य सुखों का उपभोग करता हुआ कभी नन्दीश्वर द्वीप, कभी सुमेरू पर्वत, कभी पंचमेरू में और कभी मध्यलोक में आकर कृत्रिम अकृत्रिम जिनमन्दिरों की वन्दना करते हुए महान पुण्य का संचय करता रहता है। उधर पूर्व में जो उनका पुत्र केशव था, उसी स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ था वह भी अच्युतेन्द्र के साथ ही जिनेन्द्र देव की आराधना करते हुए महान पुण्य का संचय कर रहा है)

(चतुर्थ दृश्य)

(अच्युतेन्द्र की देवायु के जब छह माह शेष रह गये तो उनके गले में पड़ी कल्पवृक्षों की पुष्पमाला मुरझाने लगी अतः वह समझ गये कि मेरी आयु का अन्तकाल आ गया है)

अच्युतेन्द्र : ओह! यह मेरी माला सूख रही है जिसका मतलब है कि मेरा अन्तकाल आ रहा है अतः मुझे जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में अपने चित्त को अनुरक्त करना चाहिए।

देवसाथी : प्रभो! आपने उचित विचार किया। यह जिनधर्म ही हमें न सिर्फ दिव्य सुखों को देने वाला है अपितु मोक्ष सुख को भी प्रदान करने वाला है।

प्रतीन्द्र : हे स्वामिन्! मैं भी आपके साथ जिनेन्द्र देव की वन्दना हेतु चलूंगा।

अच्युतेन्द्र : ठीक है प्रतीन्द्र! आप ही क्या, जो भी देवबन्धु मेरे साथ जिनवन्दना करना चाहते हों, चल सकते हैं।

सभी देव : हे देवोत्तम! हम अवश्य चलेंगे।

(सभी धर्म का गुणानुवाद करते हैं)

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो, धर्मम् बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धमार्य तस्मै नमः।।

अनन्तर वह सभी जिनवन्दना हेतु प्रस्थान करते हैं ज्यों-२ छह माह व्यतीत होते हैं त्यों-त्यों वह अच्युतेन्द्र धर्म में और अधिक अनुरक्त होते जाते हैं और अन्त में एक वृक्ष के नीचे पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ हो जाते हैं।

(ध्यान मुद्रा में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए दिखावें)

अच्युतेन्द्र : ऊँ सिद्धाय नमः, ऊँ सिद्धाय नमः, ऊँ सिद्धाय नमः।

(इस प्रकार मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया और वह पुण्डरीकणी नगरी में वज्रसेन राजा एवं श्रीकांता रानी के "वज्रनाभि" नाम का पुत्र हुआ और वह 'प्रतीन्द्र' का जीव अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर उसी नगरी में कुबेरदत्त वणिक् की स्त्री अनन्तमती से "धनदेव" नाम का पुत्र हुआ।)

८. वज्रनाभि चक्रवर्ती

सामूहिक प्रार्थना का एक गीत

(राजदरबार का प्रथम दृश्य - राजनर्तकी द्वारा नृत्य)

पुण्डरीकणी नगरी के राजा वज्रसेन अपने राजदरबार में बैठे हैं। ऐसा लगता है मानो वे आज किसी शुभ सूचना का इन्तजार कर रहे हैं। जी हाँ! आज उनकी प्रिय रानी श्रीकान्ता प्रसूतिगृह में हैं और भावी पुत्र के शुभागमन की प्रतीक्षा में महाराज अति व्याकुल हैं। अचानक महाराज उठकर टहलते हुए मन्त्री से वार्ता करने लगते हैं)

राजा वज्रसेन : मन्त्री महोदय! अभी तक कोई समाचार नहीं आया हम अपने पुत्र का मुख देखने को अति व्याकुल हैं।

मंत्री : महाराज, धीरज रखिये। आपके साथ-साथ हम और सारी प्रजा भी अपने भावी राजा की प्रतीक्षा में आकुलित है। आइये, अन्तःपुर की ओर चलें। तभी अचानक एक दासी का प्रवेश-

दासी : (प्रसन्न मुद्रा में) बधाई हो प्रजापति! बधाई हो! रानी श्रीकान्ता ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है। पुत्र का मुखमण्डल ऐसा चमक रहा है लगता है कोई दिव्यात्मा हो।

राजा : (इनाम स्वरूप अपने गले का हार देते हुए) लो दासी। इस शुभ सूचना को सुनाकर तुमने मेरे हृदय को बहुत प्रसन्न कर दिया है। यह लो अपना पुरस्कार।

दासी : महाराज की जय हो! महाराज सदा जयशील रहें, आपकी कीर्तिपताका सर्वत्र लहराती रहे। (प्रणाम कर चली जाती है)

मन्त्रीः स्वामिन्! अब मुझे भी प्रस्थान की आज्ञा दीजिए ताकि मैं भी सारी प्रजा को यह शुभ समाचार सुनाकर खुशियां मना सँकू।

राजा : आज्ञा है मन्त्रिवर! मै भी अपने पुत्र का मुखावलोकन करने हेतु अन्तःपुर की ओर प्रस्थान करता हूँ। (राजा एवं मन्त्री दोनों अलग-२ दिशाओं में चले जाते हैं।)

(इस प्रकार राजा वज्रसेन के पुत्र वज्रनाभि के पश्चात् क्रम-२ से अनेक पुत्र हुए। व्याघ्र आदि के जीव, मतिवर मन्त्री आदि के जीव सब उन्हीं राजा वज्रसेन के पुत्र हुए। ठीक ही कहा है बन्धुओं! जीव पूर्वभव के संस्कारों से ही एक जगह इक्ट्ठे होते हैं)

(द्वितीय दृश्य)

(युवराज वज्रनाभि पूर्ण यौवन को प्राप्त हो चुके हैं। अन्य कुमार भी नवयौवन प्राप्त कर चुके हैं। स्वर्ण के समान देदीप्यमान शरीर के स्वामी वज्रनाभि "जिनका शरीर वज्र के समान मजबूत है" के शरीर में स्थित नाभि के बीच में एक अत्यन्त स्पष्ट वज्र चिन्ह है जो कि आगामी काल में होने वाले चक्रवर्तीपने को ही मानो सूचित कर रहा है। सभी विद्याओं और कलाओं में पारंगत कुमार वज्रनाभि को पूर्णरूपेण संचालन में निपुण जानकर राजा वज्रसेन अपनी सम्पूर्ण राज्यलक्ष्मी को उसे सौंपने हेतु उद्यत होते हैं और द्वारपाल से कहकर कुमार को बुलवाते हैं) (राजदरबार का दृश्य-मन्त्रीगण राजा के साथ बैठे हैं)

युवराज वज्रनाभि : (राजदरबार में प्रवेश कर) प्रणाम पिताश्री ! आपने मुझे याद किया। कहिये, मेरे लिए क्या आज्ञा है।

राजा वज्रसेन : हाँ पुत्र! आज तुम्हें एक विशेष कार्य हेतु बुलवाया है।

युवराज : वह कार्य क्या है पिताश्री?

राजा : (सिंहासन से उठकर पुत्र के समीप जाकर स्नेह से मस्तक पर हाथ फेरते हुए) बेटा! अब तुम पूर्णरूपेण राज्यसंचालन के योग्य हो चुके हो अतः मैं इस राज्यलक्ष्मी को तुम्हे सौंपकर अब निश्चिन्त होकर जिनाराधना करना चाहता हूँ।

युवराज : परन्तु पिताश्री! मैं.....

राजा : (बीच में ही) नहीं पुत्र! यह हमारी कुलपरम्परा रही है कि पुत्र के राज्यसंचालन में योग्य हो जाने पर राजगद्दी उसे सौंपकर पिता जिनेन्द्र भक्ति में तत्पर हो अपना जीवन सफल करते हैं।

मन्त्रीगण : परन्तु नगराधिपति! आपकी रिक्तता, आपका विछोह हम कैसे सहन कर पायेंगे हम तो आपके बिना रहने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

युवराज : हाँ पिताश्री! कैसे रहेंगे हम आपके बिना।

राजा : अरे! पुत्र! इतने समझदार होकर यह कैसी बातें कर रहे हो। देखो, इस संसार में प्राणी अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है, मृत्यु का कोई भरोसा नहीं, मात्र अपने साथ एक जिनधर्म ही जाना है अतएव अन्त में उसकी शरण में आकर समाधिपूर्वक शरीर का

त्याग करना ही श्रेयस्कर है और तुमको भी इसी परम्परा का निर्वाह करना है। (मंत्रीगणों से) मंत्रियों! शीघ्र ही युवराज के राज्याभिषेक की तैयारी करो।

मंत्रीगण : जो आज्ञा महाराज! (एक मंत्री राज्याभिषेक की तैयारी हेतु जाता है और पुरोहित आदि के साथ में आता है। महाराज युवराज को राजमुकुट पहनाकर राज्याभिषेक कर देते हैं पुनः कहते हैं)

राजा : पुत्र वज्रनाभि "तू बड़ा भारी चक्रवर्ती हो"।

(इस प्रकार राजा वज्रसेन अनेक राजाओं के साथ-साथ पुत्र को आशीर्वाद देकर राज्यभार सौंप देते हैं और स्वयं वैराग्य भावना का चिन्तवन करने लगते हैं। (वैराग्य भावनाओं का चिन्तवन करते हुए राजा वज्रसेन एक दिन मन में पूर्ण विरक्तता का विचार करते हैं)

राजा वज्रसेन : ओह! यह चंचल लक्ष्मी, ये राज्य वैभव सब क्षणभंगुर है, मृत्यु कब आ जाए क्या ठिकाना । जिनधर्म ही सच्चा एवं सारभूत है देखो धर्म के बारे में कहा है -

जाचें सुरतरू देय सुख, चिन्तत चिंता रैन।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख देन।।

इसलिए मुझे अब शीघ्र ही जिनदीक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिए।

(वज्रसेन के वैराग्य भाव को जानकर लौकान्तिक देव आ जाते हैं)

लौकान्तिक देव-१: प्रभो! आपने बहुत ही उत्तम विचार किया है।

लौकान्तिक देव-२: हे पुरूषोत्तम! वास्तव में मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जिनदीक्षा ग्रहण करना सर्वश्रेष्ठ है। देखो बड़े-२ तीर्थंकर, चक्रवर्ती जो कि उत्तम शरीर, उत्तम संहनन और उत्तम दिव्य सुखों के स्वामी होते हैं वह भी संसार की क्षणभंगुरता को जान विरक्त हो जिनदीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

लौकान्तिक देव-३: चलिए राजाधिराज! आनीत नामकी पालकी तैयार है।

(राजा वज्रसेन लौकान्तिक देवों द्वारा लायी गयी आनीत नामक पालकी में बैठकर आम्रवन में पहुंचते हैं और उस बड़े भारी उपवन में उनके साथ एक हजार राजा स्वयं दीक्षित हो जाते हैं)

नोट : (इस दृश्य में एक वृक्ष के नीचे एक चौकी पर बैठे महाराज वज्रसेन को

केशलोंच करते व आभूषण उतारते हुए दिखावें)

(इधर भगवान वज्रसेन इन्द्रों द्वारा पूजित हो उत्कृष्ट एवं निर्दोष तप एवं ध्यान में लीन हो जाते हैं और उधर राजा वज्रनाभि प्रजा का सर्वप्रकारेण संचालन, पालन करते हुए अपनी रानियों के साथ दिव्य राजसुखों का उपभोग करते हुए सदा प्रसन्नचित रहते थे।)

(तृतीय दृश्य)

(राजा वज्रनाभि का राजदरबार) (नृत्यांगना द्वारा नृत्य)

(राजा वज्रनाभि मंत्रियों के साथ राज्यसम्बन्धी वार्ता कर रहे हैं)

राजा वज्रनाभि : मंत्रिवर! हमारे राज्य में सारी प्रजा सुखी तो है ना।

मंत्री : हाँ प्रभो! भला आपके राज्य में भी कोई दुःख हो सकता है, सर्वत्र प्रजा में सुख ही सुख है।

(तभी द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल : महाराज की जय हो। महाराज आपकी आयुधशाला में देदीप्यमान चक्ररत्न प्रकट हुआ है।

राजा : तुमने बहुत ही उत्तम समाचार सुनाया है। मंत्रियों! दिग्विजय प्राप्ति की तैयारी करो।

मंत्रीगण : जो आज्ञा महाराज!

(राजा वज्रनाभि छह खण्ड पृथ्वी को जीतने हेतु उस चक्ररत्न के साथ अपनी विशाल अक्षौहिणी सेना लेकर चल पड़ते हैं और शीघ्र ही पिता के आशीर्वाद एवं अपने बाहुबल से छह खण्ड पृथ्वी को जीतकर चक्रवर्ती वज्रनाभि के रूप में जगप्रसिद्ध हो जाते हैं।)

(उधर वह प्रतीन्द्र का जीव जो उसी नगरी में धनदेव हुआ था उस चक्रवर्ती की निधियों एवं रत्नों में शामिल होने वाला तथा राज्य का अंगभूत गृहपति नाम का तेजस्वी रत्न हो जाता है। चिरकाल तक वह बुद्धिमान और विशाल अभ्युदय का धारक वज्रनाभि चक्रवर्ती पृथ्वी का उपभोग करते हुए जिनमन्दिरों एवं जिनप्रतिमाओं के दर्शन, वन्दन एवं महाभिषेक पूजा में अपने चित्त को लगाता है और एक समय अपने पिता जो कि अब 'तीर्थंकर वज्रसेन' हो चुके हैं, उनके समवसरण में जाता है और अत्यन्त

दुर्लभ रत्नत्रय का स्वरूप जानकर विरक्त हो जाता है।)

(चतुर्थ दृश्य)

(समवसरण का दृश्य) तीर्थंकर वज्रसेन की दिव्य ध्वनि खिर रही है, चक्रवर्ती वज्रनाभि अनेक राजाओं के साथ उस समवसरण में जाकर तीर्थंकर को नमस्कार कर अपने योग्य कोठे में बैठ जाते हैं।

तीर्थंकर वज्रसेन : (इसे पर्दे के पीछे से बोलें) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता ही मोक्ष का मार्ग है, इस रत्नत्रय को धारण करने वाला जीव संसार से तिर जाता है। देखो भव्य प्राणियों! चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करता हुआ ये जीव कभी देव बनता है, कभी नरक गति की असह्य दुःख वेदनाओं को सहन करता है, कभी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय होता है तो कभी नित्य निगोद में चला जाता है जहाँ कोई सम्बोधन नहीं, मनुष्य भी हुआ तो उत्तम कुल, उत्तम जाति, उत्तम धर्म और ये सम्यग्दर्शन मिलना अतिदुर्लभ है। अहो! संसार में कोई सुख नहीं, सुख तो आत्म चिंतन में है, मोक्ष में है।

चक्रवर्ती : (मन में) ओह! अभी तक मैं भौतिक सुखों में डूबा रहा सचमुच रत्नत्रय की प्राप्ति बड़ी दुर्लभता से होती है अब मुझे भी जिनदीक्षा ग्रहण कर आत्मकल्याण करना चाहिए।

(प्रत्यक्ष में) प्रभो! आज मेरे ज्ञानचक्षु खुल गये। प्रभो! आपकी महिमा अपरम्पार है। जो चतुर पुरूष रसायन के समान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों का सेवन करता है वह अचिन्त्य और अविनाशी मोक्षरूपी पद को प्राप्त करता है।

(ऐसा विचार कर उस चक्रवर्ती ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को जीर्ण तृण के समान मानकर त्याग करने हेतु अपने वज्रदन्त नामक पुत्र को राज्य समर्पण कर सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों और धनदेव के साथ मोक्षप्राप्ति के उद्देश्य से पिता वज्रसेन तीर्थंकर के समीप भव्य जीवों के द्वारा आदर करने योग्य जिनदीक्षा धारण कर ली और पंच महाव्रत, उनकी पच्चीस

भावनाओं, पांच समितियों का पालन करते हुए, पृथ्वी पर बहुत समय तक विहार करते हुए तीर्थंकर वज्रसेन के समीप सोलहकारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया। विशुद्ध भावनाओं को धारण करने वाले वे चक्रवर्ती मुनिराज क्रम-२ से विशुद्ध परिणामों से विशुद्ध हो ग्यारहवें गुणस्थान को प्राप्त हुए और औपशमिक चारित्र को प्रकटकर आयु के अन्त में श्रीप्रभ नामक ऊँचे पर्वत पर प्रायोपगमन धारण कर शरीर और आहार से ममत्व छोड़ बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हुए पृथक्त्ववितर्क नामक शुक्लध्यान को पूर्णकर उत्कृष्ट समाधि को प्राप्त हो सर्वार्थसिद्धि नामक विमान में अहमिन्द्र हो गये)

६. सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र

मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य

(पांचवे अनुत्तर सर्वार्द्धसिद्धि का दृश्य)

(प्रथम दृश्य)

(अहमिन्द्रों की सभा लगी हुई है सभी अहमिन्द्र आज बहुत प्रसन्न हैं और आपस में चर्चा कर रहे हैं) क्या चर्चा कर रहे हैं, आइये देखें -

अहमिन्द्र १ : सर्वार्थसिद्धि में जन्म लेने वाले मेरे मित्रों! आज का दिवस हमारे लिए बहुत ही शुभ है। आज एक अत्यन्त पुण्यशाली आत्मा हमारे मध्य एक नये मित्र के रूप में आने वाली है।

अहमिन्द्र २ : देवर्षि! आप किस पुण्यशाली आत्मा की बात बता रहे हैं?

अहमिन्द्र ३ : इन्द्रराज! यहाँ तो वही जन्म लेता है जो चतुर्गति भ्रमण से छुटकारा पा मात्र एक ही भव धारण कर मोक्ष जाने वाला है।

अहमिन्द्र १ : हाँ, हाँ, मित्रगणों! तुम्हारी जिज्ञासा की पुष्टि मैं अभी किये देता हूँ। अभी-अभी कुछ देर पहले ही मध्यलोक में चहुँओर अपनी कीर्ति पताका फहराने वाले और जीवन के अन्त समय में बारह भावनाओं का चिन्तन करने व सोलहकारण भावनाओं को भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने वाले चक्रवर्ती 'वज्रनाभि मुनिराज' शुक्लध्यान पूर्ण कर समाधि पूर्वक शरीर का त्याग कर इस सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र के रूप में जन्म लेने वाले हैं।

अहमिन्द्र ४ : अच्छा, अच्छा! उन्होंने तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया है तभी आप इतनी प्रसन्नतापूर्वक उनका गुणगान कर रहे हैं।

अहमिन्द्र ५ : अच्छा यह तो बताइये कि वे अहमिन्द्र किस क्षेत्र में तीर्थंकर बनने वाले हैं?

अहमिन्द्र १ : सुनो देवगणों! अहमिन्द्र होने के पश्चात् यहाँ की आयु पूर्ण कर वे महात्मा जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में जन्म लेने वाले हैं। वहाँ वे तीर्थंकर ऋषभदेव के रूप में अवतरित होंगे।

सभी अहमिन्द्र : (अपने अवधिज्ञान से जानकर) जय हो, जय हो, तीर्थंकर ऋषभदेव की जय हो। देवर्षि! चलिए ना, हम भी चलकर उन अहमिन्द्र का

अपने इस अनुत्तर विमान में स्वागत करें।

अहमिन्द्र : चलो मित्रों! मै भी चलता हूँ।

(इतना कहकर सभी निकल जाते हैं।)

(द्वितीय-दृश्य)

सर्वार्थसिद्धि में सुन्दर एवं सुसज्जित शैय्या पर एक सोलह वर्षीय तरूण देव सो रहे हैं। अचानक जोर-२ से बाजे एवं नगाड़े, तुरही आदि बजने लगते हैं, पुष्पों की वर्षा एवं मंद-मंद हवा चल रही है कि तभी अनेक अहमिन्द्र वहाँ पर आ जाते हैं।

अहमिन्द्र : (शैय्या पर उठकर बैठ जाते हैं और पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हैं) ऊँ नमः। णमो अरिहंताणं, णमो.....। (पुनः आश्चर्यपूर्वक) ओह! यह कौन सा स्थान है? यह मै कहाँ आ गया? मैं कौन हूँ? इतनी भव्यता? यह सामने खड़े दिव्य पुरूष कौन हैं? इन्ही से पूछना पड़ेगा।

(तभी) एक अहमिन्द्र : प्रणाम अहमिन्द्र देव! सर्वार्थसिद्धि में आपका शुभागमन मंगलमय हो। इस अनुत्तर विमान में आप अहमिन्द्र के रूप में जन्में हैं।

अहमिन्द्र : (कुछ विचारमग्न हो जाते हैं) अच्छा, अच्छा, मै सब जान गया। अवधिज्ञान के द्वारा मैं अपने पूर्वभव की सारी बातें जान गया हूँ ओह! सम्यक्त्व के प्रभाव से और जिनमुद्रा को धारण करने के फलस्वरूप ही मैं इस सर्वोत्तम विमान में आया हूँ। जिनधर्म का प्रभाव ही ऐसा है कि तिर्यंच प्राणी भी सम्यग्दर्शन या अणुव्रत के प्रभाव से देव बन जाते हैं फिर मैं तो महाव्रती था।

सभी अहमिन्द्र : आइए मित्रवर ! इसी धर्म की शरण में हमें पुनः चलना है। उठिये सर्वप्रथम जिनेन्द्र देव की पूजन कीजिए।

अहमिन्द्र : ठीक है मित्रों! चलो मैं तैयार हूँ।

(अहमिन्द्र देव पूजन के वस्त्र पहनकर तैयार हो जाते हैं और देवों के साथ अकृत्रिम जिन मन्दिर में पहुँचकर भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं।)

(मंदिर का दृश्य) अहमिन्द्र मंदिर में प्रवेश करते हैं और -

अहमिन्द्र : ऊँ जय, जय, जय, निःसही निःसही निःसही, नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु। णमो अरिहंताणं.....। पुनः अभिषेक करते हैं- ऊँ ह्री श्रीं क्लीं ऐं अर्हं....। पुनः पूजन करने के लिए अन्य अहमिन्द्रगणों के साथ बैठ जाते हैं। (पूजन का दृश्य दिखावें)

(पूजन के पश्चात् वे पुनः सर्वार्थसिद्धि में अपने स्थान में आकर तत्वचर्चा करते हुए दिव्य सुखों का उपभोग करने लगते हैं। उन्होंने अपने वचनों की प्रवृत्ति जिनप्रतिमाओं के स्तवन करने में, मन उनके गुण-चिन्तवन में और शरीर उनके नमस्कार में लगाया था)

(उधर वज्रनाभि के वे विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ नाम के आठों भाई तथा विशाल बुद्धि का धारक धनदेव यह नौ जीव भी अपने पुण्य के प्रभाव से उसी सर्वार्थसिद्धि में वज्रनाभि के समान ही अहमिन्द्र हो गये और उन अहमिन्द्र के साथ मोक्षतुल्य सुख का अनुभव करने लगे)

(तृतीय दृश्य)

(पुण्यात्मा जीवों में प्रधान वह अहमिन्द्र तैंतीस सागर प्रमाण आयु वाला स्वयं अतिशय देदीप्यमान, समचतुरस्र संस्थान से युक्त, हंस के समान श्वेत शरीर से युक्त था। साथ ही दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषणों से विभूषित था। तैंतीस हजार वर्ष व्यतीत होने पर मानसिक दिव्य आहार ग्रहण करता हुआ, सोलह महीने पन्द्रह दिन होने पर स्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था और सभी के सभी अहमिन्द्र शुभ कर्म के उदय से निर्बाध सुख से युक्त थे अर्थात् प्रवीचार सुख से रहित थे, उन्हें काम की बाधा नहीं है, एक मात्र तत्वचर्चा और जिनेन्द्र भक्ति में तल्लीन रहते थे)

चूंकि वे अहमिन्द्र परक्षेत्र में विहार नहीं करते इसलिए कभी-२ अपने साथी मित्रों के साथ अपने निवास स्थान के समीपवर्ती उपवन के सरोवर के किनारे की भूमि में क्रीड़ा हेतु जाते रहते थे।

अहमिन्द्र : (अपने साथी मित्रों से) प्रिय मित्रों! आज हमारी इच्छा क्रीड़ा हेतु जाने की हो रही है।

दूसरा देव : देवर्षि! चलिए हम आपके साथ चलने को तैयार हैं।

अहमिन्द्र : पर स्थान कौन सा चुना जाये?

एक अन्य देव : यह जो अपने निवास स्थान के समीपवर्ती उपवन में सरोवर है

ना । वहीं चलते हैं हम।

अहमिन्द्र : हाँ, हाँ! यह स्थान ठीक रहेगा। हम वहाँ जलक्रीड़ा करेंगे। (उन नौ अहमिन्द्रों से प्रीतिपूर्वक) हे अहमिन्द्रों! आप भी हमारे साथ चलिए।

नौ अहमिन्द्र : (एक साथ) अवश्य! क्यों नहीं! हम अवश्य चलेंगे।

(सभी क्रीड़ा हेतु आमोद-प्रमोद करते हुए प्रस्थान करते हैं) (जलक्रीड़ा दिखावें) (पुनः सभी हंसते-बोलते हुए वापस आ जाते हैं और अपनी सभा में आकर अपने-२ स्थान पर बैठ जाते हैं और अहमिन्द्रों के साथ संभाषण करने में वह अहमिन्द्र देव तत्पर हो जाते हैं)

एक देव : हे अहमिन्द्र! कृपया हमें अहमिन्द्र शब्द का अर्थ बतायें।

अहमिन्द्र : "मैं इन्द्र हूँ, मैं इन्द्र हूँ" इसके अतिरिक्त जहाँ और कोई चिन्तवन, कोई भेद नहीं है वह अहमिन्द्र कहलाते हैं।

देव २ : हे महाभाग! कर्मबन्ध का क्या कारण है?

अहमिन्द्र : सुनो! कर्मबंन्ध के पांच कारण हैं- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

देव १ : इनमें प्रधान कारण क्या है?

अहमिन्द्र : इनमें मिथ्यात्व और कषाय प्रधान है।

देव ३ : ऐसा क्यों मित्रवर?

अहमिन्द्र : ऐसा इसलिए क्योंकि मोहनीय कर्म के दो भेद हैं और सब कर्मों में मोहनीय कर्म प्रधान है। मोहनीय के अभाव में संसार परिभ्रमण का चक्र ही रूक जाता है। इन मिथ्यात्व और कषाय के आधीन हुआ संसारी जीव ज्ञानावरण आदि सात कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंधो को प्रति समय ग्रहण करता है।

देव ४ : प्रभो! पुण्य का उत्कृष्ट फल क्या है?

अहमिन्द्र : पुण्य का उत्कृष्ट फल परिणामों को शान्त रखने, इन्द्रियों का दमन करने और निर्दोष चारित्र पालन करने से पुण्यात्मा जीवों को प्राप्त होता है।

देव ५ : और पाप का उत्कृष्ट फल क्या है?

अहमिन्द्र : पाप का उत्कृष्ट फल परिणामों को शान्त नहीं रखने, इन्द्रियों का दमन नहीं करने, निर्दोष चारित्र पालन नहीं करने से तथा हिंसादि

पापों के करने से पापी जीवों को प्राप्त होता है।

देव ६ : हे महापुरूष! सिद्ध भगवान का स्वरूप क्या है? ये कहाँ रहते हैं?

अहमिन्द्र : सिद्ध परमेष्ठी अष्ट कर्मों से रहित और आठ गुणों से सहित होते हैं, ये सिद्धशिला पर विराजमान रहते हैं।

देव ८ : अच्छा! और उनका सुख कैसा है?

अहमिन्द्र : सिद्धों का सुख केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है, बाधारहित है, कर्मों के क्षय से उत्पन्न होता है, परम आल्हाद रूप है, अनुपम है और सबसे श्रेष्ठ है।

(इस प्रकार वह अहमिन्द्र सदा तत्वचर्चा में तल्लीन रहते हुए सदा सम्यग्दर्शन की प्रशंसा किया करता था। उसमें न तो असूया है, न परनिन्दा है, न आत्मप्रशंसा है और न ईर्ष्या ही है वहाँ सभी अहमिन्द्र अपनी आत्मा के आधीन उत्पन्न हुए उत्कृष्ट सुख को धारण करते हुए सदैव प्रसन्न रहते हैं)

(और एक दिन वह अहमिन्द्र यह सोचकर कि अब मुझे सर्वप्रकारेण भगवत् भक्ति में तल्लीन होना चाहिए बारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगते हैं और दर्शन विशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिन्तवन करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं।)

१०. भगवान् ऋषभदेव

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य)

सारे जग का तू सरताज - बाबा हो बाबा।
तूने मोक्षमार्ग बतलाया, जग को जीवन कला सिखाया, आदिब्रह्मा तू कहलाया।
सारे जग का तू सरताज - बाबा हो बाबा।।
कर्मयुग के प्रथम आप अवतार हैं।
नाभिनन्दन को जग का नमस्कार है।।
माता मरुदेवी हर्षाईं, जिनके घर में बजी बधाई,
सबके मन में खुशियाँ छाई।। सारे जग. ।।१।।
तुम अयोध्या में जन्में व शासन किया।
अष्टापद गिरि पे जाकर के शिवपद लिया।।
तुमने पहले ब्याह रचाया, फिर जा वन में दीक्षा पाया,
सिद्धं नमः मंत्र को ध्याया।। सारे जग. ।।२।।
एक वरदान प्रभु मुझको दे दीजिए।
अपने चरणों में मुझको बुला लीजिए।।
मैंने तुझको शीश झुकाया, मन में तेरा ध्यान लगाया,
फिर तो जो चाहा सो पाया।। सारे जग. ।।३।।

(द्वितीय दृश्य)

(चारों ओर रत्नों की वृष्टि हो रही है स्वर्ग से धनकुबेर आकर उत्तम-उत्तम रत्नों की वर्षा कर रहा है। चारों ओर खुशी का वातावरण है। सभी लोग आपस में चर्चा कर रहे हैं)

एक आदमी : देखो, देखो! चारों ओर कैसे रत्न बिखरे हुए हैं, हमारी अयोध्या नगरी कितनी सुन्दर लग रही है।

दूसरा : हाँ सो तो है! लेकिन भाई! यह तो बताओ कि ये रत्नवृष्टि क्यों हो रही है?

पहला : अरे भाई! कमाल है! तुम्हें यह भी नहीं मालूम! अपने महाराज नाभिराय हैं न! उनकी रानी मरुदेवी के तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न होने वाला है।

दूसरा : क्या कहा? पुत्र उत्पन्न होने वाला है! लेकिन इस व्यक्ति को कैसे मालूम हुआ? (धनकुबेर की ओर इशारा करते हुए)

पहला : ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। ये स्वर्ग से आए धनकुबेर हैं।

दूसरा : धनकुबेर! मुझे ठीक से बताओ।

पहला : सुनो! सौधर्मइन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से सब कुछ जानकर इन कुबेरजी को यहाँ रत्नवृष्टि करने भेजा है।

दूसरा : अच्छा, तो ये बात है! हाँ भाई, आखिर भगवान जी जन्म लेने वाले हैं।

पहला : हाँ, अब से पन्द्रह महिने बाद हम भी तीर्थंकर बालक को गोद में खिलाऐंगे। (वहीं खड़ी एक स्त्री, जो कि अब तक सब सुन रही थी, चौंक पड़ी और बोली)

स्त्री : क्या कहा? पन्द्रह महीने बाद?

पुरूष : हाँ, अब से छह महिने बाद प्रभु गर्भ में आयेंगे पुनः नव महिने बाद जन्म लेंगे।

दूसरा पुरूष : तो क्या पन्द्रह महिने तक रोज ही ऐसे रत्नों की वर्षा होती रहेगी?

पहला पुरूष : हाँ भाई! यही तो तीर्थंकर प्रभु की महिमा है।

तीसरा पुरूष : देखो! जन्म लेने से पहले ही जब इतना अतिशय है तो जन्म लेने के बाद तो कितना मजा आएगा।

(तृतीय दृश्य)

(महाराज नाभिराज का ८१ खन ऊँचा महल, रात्रि का प्रहर है महारानी मरुदेवी शयन कक्ष में निद्रा मग्न हैं। तभी पिछले प्रहर में रानी एक, दो नहीं पूरे सोलह स्वप्न देखती हैं) प्रातः प्रसन्नमुद्रा में उठकर हाथ जोड़कर प्रभु को नमस्कार करती हैं -

रानी मरुदेवी : ऊँ नमः सिद्धेभ्यः। णमो अरिहंताणं....(आस-पास चारों ओर अनेक दासियाँ खड़ी हुई हैं रानी को प्रसन्नचित्त देखकर पूछती हैं

दासी : महारानी की जय हो! रानी जी आज आप बहुत खुश लग रही हैं क्या बात है?

महारानी : हाँ कान्ते! बात ही कुछ ऐसी है।

दूसरी दासी : (उत्सुकता से) जल्दी कहिए महारानी जी!

महारानी : सुनो! आज रात्रि में मैने सोलह स्वप्न देखे हैं।

दासियाँ : (चौंककर एक साथ) क्या महारानी जी! सोलह स्वप्न देखे हैं आपने!

महारानी मरुदेवी :(हँसती हुई) हाँ, हाँ मैंने ठीक से गिने थे, पूरे सोलह सपने थे।

दासी : (हाथ जोड़कर) रानी जी, अब जल्दी से उन स्वप्नों के बारे में बता दीजिए।

महारानी मरुदेवी :इतनी आतुर मत होओ, सुमंलला! अभी स्नान वगैरह करके महाराज के पास चलते हैं वहीं तुम भी सुन लेना।

(दासियाँ रानी को हंसी-खुशी स्नानादि करवाती हैं पुनः तैयार होकर महारानी दरबार में प्रवेश करती हैं)

(दरबार का दृश्य, राजा सिंहासन पर बैठे हैं प्रजाजन यथास्थान बैठे हैं, महारानी सखियों सहित प्रवेश करती हैं) प्रजा के लोग अपने स्थान पर खड़े होकर महारानी का सम्मान करते हैं।

सामूहिक स्वर : महारानी की जय हो! रानी मरुदेवी की जय हो!

(रानी अपने आसन पर बैठ जाती हैं प्रजा के लोग भी यथास्थान बैठ जाते हैं)

महाराजा नाभिराय:कहिए महारानी जी! आप ठीक हैं न! रात में नींद तो अच्छी आई।

मरुदेवी : हाँ राजन! मैं बिल्कुल ठीक हूँ और आपकी कुशलता की कामना करती हूँ।

नाभिराय : आज कोई खास बात है क्या? आज सुबह-सुबह राजदरबार में।

मरुदेवी : हाँ स्वामी जी! बात ही कुछ ऐसी थी कि मुझे राजदरबार में सुबह-सुबह आना पड़ा।

नाभिराय : कहिये प्राण प्रिये! आप क्या कहना चाहती हैं।

मरुदेवी : (प्रसन्न मुद्रा में) प्राणनाथ! आज रात्रि में मैंने सपने देखे हैं।

नाभिराय : तो क्या हुआ देवी! सपने तो रोज सभी देखते हैं।

सखी : (बीच में ही) यही तो आपको बताने आई हैं ये। इन्होंने एक नहीं, दो नहीं पूरे सोलह सपने देखे हैं।

नाभिराय : (आश्चर्य से) सोलह सपने! जरा मैं भी तो सुनूँ उन सोलह स्वप्नों की कहानी!

मरुदेवी : हाँ महाराज! सुनिए! पहले स्वप्न में मैंने ऐरावत हाथी देखा, दूसरे में बैल देखा....

(इस प्रकार महारानी, महाराजा को सोलह स्वप्नों के बारे में बताती हैं पुनः कहती हैं)

मरुदेवी : हे नाथ! स्वप्नों के अन्त में मैंने देखा कि एक सुन्दर सा बैल मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है।

(नाभिराय उन स्वप्नों के बारें में सुनकर प्रसन्न होते हैं और एक-एक स्वप्न का फल रानी को बता रहे हैं) पुनः कहते हैं-

नाभिराय : देवी! इन स्वप्नों का फल यह है कि तुम तीर्थंकर की माता बनने वाली हो तुम्हारे पवित्र गर्भ में तीर्थंकर का जीव अवतीर्ण हो चुका है।

(इसी प्रकार सभी प्रजाजन भी हर्ष से पुलकित हो उठते हैं, सखियाँ भी हर्ष से रोमांचित हो जाती हैं तथा महारानी मरूदेवी के साथ अठखेलियाँ करते हुए उन्हें अन्तःपुर में ले जाती हैं।)

स्वर्ग से देवतागण आकर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ माता की सेवा कर रही हैं उनसे अनेक-अनेक प्रश्न करके माता का मनोरंजन कर रही हैं। (गर्भ कल्याणक का सामूहिक गीत)

(चतुर्थ दृश्य)

(चैत्र वदी नवमी का शुभ दिवस है। माता मरुदेवी ने तीर्थंकर बालक को जन्म दिया है सम्पूर्ण अयोध्या नगरी इन्द्रों ने स्वर्ग जैसी सजाई है। सब तरफ मुंह-मांगा धन बँट रहा है। सब तरफ ढ़ोल नगाड़े बज रहे हैं।

स्वर्ग का दृश्य- स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्म हुआ जानकर अपने सिंहासन से उतरकर सात पैर आगे बढ़कर परोक्ष में प्रभु को नमस्कार करते हैं पुनः आदेश देते हैं -

सौधर्म इन्द्र : स्वर्ग में रहने वाले मेरे सभी देव भाइयों! सुनो! चलो ऐरावत हाथी को खूब सुन्दर सजा दो हम सब मध्यलोक चलेंगे।

देव : जो आज्ञा सौधर्मेन्द्र!

(सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठकर अपने विशाल देव परिकर के साथ नाचते-झूमते मध्यलोक पहुँचते हैं।)

देवों का सामूहिक स्वर : तीर्थंकर ऋषभदेव की जय हो! अयोध्या तीर्थ की जय हो!

महाराजा नाभिराय की जय हो! महारानी मरुदेवी की जय हो!

सौधर्म इन्द्र : (पिता नाभिराय से) महाराज! हमें भी प्रभु का जन्मोत्सव मनाने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

पिता नाभिराय : (खुशी से) हाँ हाँ क्यों नही! देवराज हमारे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात है।

सौधर्म इन्द्र : (शची इन्द्राणी से) हे देवि! आप प्रसूतिगृह में जाकर जिनशिशु का दर्शन करें और अपनी स्त्रीलिंग का छेद करके अपने जन्म को सफल करो। और हाँ! जल्दी ही शिशु को लेकर आना, मैं भी दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल कर लूँ और प्रभु को सुमेरू पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक कर लूँ।

(शची इन्द्राणी बहुत धीरे-धीरे अन्दर जाती है और सो रही माता मरुदेवी को मायामयी निद्रा में सुला देती है और उनके पास एक मायामयी बालक को सुलाकर जिनशिशु को गोद में उठा लेती है और खूब जी भरकर प्रभु को देखती है और फिर बाहर आती है। इन्द्र देखते ही आगे बढ़ते हैं)

सौधर्म इन्द्र : लाओ, लाओ, जल्दी से मैं प्रभु का दर्शन करूँ।

शची इन्द्राणी : हाँ हाँ अभी देती हूँ, अभी मेरा जी नहीं भर रहा है।

सौधर्म इन्द्र : (मनुहार करते हुए) हे देवी! अब मेरी आकुलता बढ़ती जा रही है जल्दी से मुझे बालक को दे दो।

(शची से बालक लेकर इन्द्र झूम उठता है और नाच-नाचकर गाने लगता है)

नाम तिहारा, तारनहारा, कब तेरा दर्शन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।
जाने कितनी माताओं ने, कितने सुत जन्मे हैं ।
पर इस वसुधा पर तेरे सम, कोई नहीं बने हैं।।
पूर्व दिशा में सूर्यदेव सम, सदा तेरा सुमिरन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर तू कितना सुन्दर होगा ।।

(इस प्रकार नाचते-गाते इन्द्र तीर्थंकर शिशु को लेकर ऐरावत हाथी पर बैठ कर सुमेरू पर्वत की ओर चल पड़ते हैं अनेक देव देवियाँ चंवर ढुराते जा रहे हैं ऐसा सुन्दर दृश्य! जो कि पहले किसी ने

नहीं देखा।)

इस प्रकार विशाल वैभव के साथ सभी लोग सुमेरू पर्वत के पास पहुँचते हैं सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी से उतरकर शिशु को सुमेरू पर्वत की पाण्डुक शिला पर बैठा देते हैं सभी देवगण ऊपर से नीचे पंक्ति में खड़े हो जाते हैं सभी के हाथों में बड़े-बड़े कलशों में क्षीरोदधि का प्रासुक जल है। जयजयकार की ध्वनि के साथ ही क्रम-क्रम से १००८ कलशों से अभिषेक सम्पन्न हो गया।

(अभिषेक के पश्चात् शची इन्द्राणी ने शिशु को सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाए जो कि वो स्वर्ग से लाई थी पुनः सब लोग गाते -बजाते वापस अयोध्या नगरी आ जाते हैं। बालक को शची इन्द्राणी माता मरुदेवी के हाथों में सौंप देती हैं माता मरुदेवी बालक को लेकर बार-बार चूमती हैं। बालक को कहीं नजर न लग जाए इस डर से टीका लगा देती है। पुनः पलने में झुलाती है बालक को)

पालना गीत : आदीश्वर झूले पालना, मरुदेवी लोरी गावें.....

(धीरे-धीरे समय बीतता गया, प्रभु बड़े होने लगे पहले धरती पर सरकना शुरू किया, पुनः चलना शुरू किया और अपनी तोतली भाषा में सबका मन बहलाने लगे। इस प्रकार प्रभु जब युवावस्था को प्राप्त हुए तब स्वयं ही सभी विद्याओं और कलाओ में निष्णात हो गए। एक बार की बात है प्रजा घबराई-घबराई सी राजा नाभिराय के दरबार में पहुँचती है)

सामूहिक स्वर : महाराज की जय हो! महाराज की जय हो!

महाराजा नाभिराय :क्या बात है भाईयों! आप लोग इतने परेशान क्यों हैं? सब ठीक-ठाक तो है?

प्रजा : महाराज! कल्पवृक्षों ने फल देना बंद कर दिया है अब आप ही बताइए कि हम क्या करें, क्या खाएँ?

नाभिराय : प्यारे भाइयों! अब आप लोग युवराज ऋषभदेव के पास जाइए वे ही इसका समाधान करेंगें।

(प्रजा युवराज ऋषभ कुमार के पास जाती है और कहती है)

प्रजा : युवराज की जय हो! युवराज! हम अब क्या करें, कैसे जिएँ?

भगवान ऋषभदेव :(अपने अवधिज्ञान से जानकर) हाँ हाँ भाइयों! मैं तुम्हारी समस्या को समझ गया हूँ। अब तुम लोग चिन्ता मत करो। कल्पवृक्ष चले गये तो क्या हुआ वृक्ष तो हैं ही! अब इन्हीं से जीवन यापन करना मैं सिखाऊँगा।

प्रजा : लेकिन भगवन्! इन वृक्षों के पास खड़े होकर मांगने से कुछ मिलता ही नहीं है।

ऋषभदेव : प्रजाजनों! अब आप लोगों को भोगभूमि से कर्मभूमि की ओर आना है। अब मैं तुम्हे खेती करना आदि छह क्रियाएँ बताता हूँ।

प्रजा : (सामूहिक स्वर में) ठीक है प्रभु! हम सब तैयार हैं।

(बस, यहाँ से मानव अपने पुरूषार्थपूर्वक जीवन का संचालन करने लगा। भगवान ऋषभदेव ने स्वयं ही उन्हें व्यापार करना, खेती करना, तलवार चलाना, मुनीमी करना, लिखना-पढ़ना, शस्त्र चलाना, चित्र बनाना आदि सिखाया जो आज तक भी चल रहा है, धीरे-२ समय बीतता गया.....)

(एक बार स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र ने कुछ विचार किया और मध्यलोक में आकर महाराजा नाभिराय से बोला -

सौधर्म इन्द्र : महाराज! मैं आपसे एक निवेदन करने आया हूँ।

महाराजा नाभिराय :कहिए देवराज! आप क्या कहना चाहते हैं?

सौधर्म इन्द्र : राजाधिराज! मैंने युवराज ऋषभदेव के लिए सुन्दर-सुन्दर दो राज कन्याएँ पसन्द कर ली हैं अगर आपकी आज्ञा हो तो.....

महाराजा नाभिराय :(बीच में ही) हाँ, हाँ, बहुत ठीक किया आपने । मैं अभी राजपुरोहित जी को बुलवाकर विवाह का शुभ मुहूर्त निकलवाता हूँ।

(मंत्री को आदेश देते हुए)

महाराजा नाभिराय :मंत्री जी! राजपुरोहित जी को शीघ्र ही राजदरबार में पेश किया जाए।

मंत्री : जो आज्ञा महाराज!

(कुछ ही मिनटों में पुरोहित जी आते हैं अपनी पोथी खोलकर मुहूर्त देखते हैं और कहते हैं)

राजपुरोहित जी : महाराज ! आज से चार दिन बाद का दिवस विवाह हेतु अति उत्तम है।

(महाराजा प्रसन्न होते हैं उचित इनाम देकर राजपुरोहित को विदा करते हैं। सभी तरफ विवाह की जोरदार तैयारियां चल रही हैं शुभ दिन में युवराज ऋषभदेव का विवाह यशस्वती और सुनन्दा नाम की दो सुन्दर कन्याओं से हो जाता है। धीरे-धीरे समय बीतता गया.....रानी यशस्वती ने भरत आदि सौ पुत्र एवं एक पुत्री ब्राह्मी को तथा रानी सुनन्दा ने एक पुत्र बाहुबलि और एक पुत्री सुन्दरी को जन्म दिया। पिता नाभिराय भी पुत्र-पौत्रों के साथ सुख में मग्न हैं)

एक दिन नाभिराय विचार करते हैं कि अब मुझे राजमुकुट त्याग करके ऋषभदेव का राज्यतिलक करना चाहिए। ऐसा सोचते ही उन्होंने घोषणा कर दी -

नाभिराय : सभासदों! अब मैने निश्चय किया है कि मैं अपना राजमुकुट उतारकर पुत्र ऋषभदेव को दे रहा हूँ मुझे आशा है कि आप सब सहमत होंगे।

(प्रजा ने जयजयकार के द्वारा सहमति प्रदान की) शुभ मुहूर्त में राज्याभिषेक हुआ। प्रजा खुशी से गीत गा रही है -

--सामूहिक गीत--

(प्रभु को राज्य संचालन करते-२ काफी काल बीत गया एक दिन इन्द्र को ख्याल आया कि प्रभु अभी राज्यसुख से विमुख नहीं हो रहे हैं। तो मुझे कोई ऐसा निमित्त प्रस्तुत करना चाहिए जिससे कि वे वैभव से विमुख हो जाएँ)

(राजदरबार का दृश्य - ऋषभदेव सिंहासन पर आरूढ़ हैं सभी लोग प्रसन्न हैं तभी इन्द्र ने नृत्य के लिए ऐसी नीलांजना नर्तकी को प्रस्तुत किया जिसकी आयु बहुत थोड़ी है। नृत्य करते-२ वह नीलांजना नर्तकी आयु पूर्ण होने पर अदृश्य हो गयी और उसकी जगह वैसी ही दूसरी देवांगना उपस्थित हो गयी, नृत्य बराबर चलता रहा कोई भी इस रहस्य को नहीं जान सका लेकिन प्रभु को सब पता लग गया और उनके हृदय में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो गए)

ऋषभदेव : बस, बस, बन्द कर दो ये नाच-गाना! मैं समझ गया। ये वैभव, ये राजलक्ष्मी सब क्षणभंगुर हैं। अब मैं दीक्षा धारण कर के अपना जन्म सफल करूँगा।

(प्रजा दुःखी हो उठती है। रानियाँ, पुत्र-पुत्रवधुएँ, पौत्र आदि सभी दुःखी हो जाते हैं उन्हें रोकने का काफी प्रयास करते हैं लेकिन भगवान ऋषभदेव इन सबकी परवाह किए बिना सब कुछ छोड़कर चल देते हैं उनके साथ चार हजार राजा भी दीक्षा लेने के लिए चल पड़ते हैं, चलते-२ प्रभु प्रयाग नगर में पहुँचते हैं। प्रयाग का

पुरिमतालपुर उद्यान है और चैत्र वदी नवमी तिथि है। प्रभु अपने हाथों से केशों को लोंच करते हैं उनके साथ ही चार हजार राजा भी केशलोंच कर देते हैं भगवान तो दीक्षा लेकर छह महिने का योग लेकर ध्यान में लीन हो गये लेकिन उनके साथी राजा दो-चार दिन बाद ही भूख-प्यास से पीड़ित हो गए)

(धीरे-२ छह महीने बीत गए। ध्यान समाप्त करके प्रभु मुनिचर्या बतलाने हेतु निकले। कोई समझ नहीं पा रहा था कि भगवान क्यों भ्रमण कर रहे हैं क्योंकि उस समय किसी को आहारदान की विधि नहीं मालूम थी। लोग अपने-२ घरों के बाहर कुछ-२ लेकर खड़े होते, कहते-

कोई कहता : आओ प्रभु! आज हमारे यहाँ बहुत अच्छा भोजन बना है।

कोई कहता : प्रभु! आपको सर्दी लगती होगी ये अच्छे-२ कपड़े हैं, ले लो।

कोई कहता : भगवन्! आप हमारी इस कन्या को ब्याह लीजिए।

(इस प्रकार से लोग कहते रहे पर प्रभु आगे बढ़ते गए। चलते-२ छह माह के भ्रमण के पश्चात् भगवान ऋषभदेव हस्तिनापुर पहुँचते हैं। प्रभु कें पहुंचने से एक दिन पूर्व वहाँ के राजा श्रेयांस ने रात्रि के पिछले प्रहर में सुमेरू पर्वत आदि सात स्वप्न देखे। प्रातःकाल पुरोहित से उनका फल पूछा)

राजा श्रेयांस : पुरोहितजी! रात्रि में मैंने उत्तम-२ सात स्वप्न देखे हैं प्रथम स्वप्न में मैंने सुमेरू पर्वत देखा है, तो इनका फल क्या है?

राजपुरोहित : राजन्! आज इस पावन नगरी में ऐसे महापुरूष पधारने वाले हैं जिनका सुमेरू पर्वत पर अभिषेक हुआ है।

(राजा खुशी से झूम उठते हैं। महल की सजावट प्रारम्भ हो जाती है। राजा श्रेयांस अपने भाई सोमप्रभ एवं भाभी श्रीमती के साथ महल के बाहर खड़े हैं। अचानक एक तरफ से सामूहिक स्वर सुनाई पड़ता है)

सामूहिक स्वर : महामुनिराज की जय हो! दिगम्बर मुनिराज की जय हो!

(लोग उन मुनिराज के आगे पीछे भाग रहे हैं महल के निकट आते ही राजा श्रेयांस ज्यों ही उन मुनिराज को देखते हैं उन्हें जातिस्मरण हो जाता है और अनायास ही उनके मुंह से निकल पड़ता है-

राजा श्रेयांस : हे स्वामी जी! नमोस्तु, नमोस्तु! अत्र अत्र, तिष्ठ तिष्ठ, आहारजल शुद्ध है। हे स्वामी जी! नमोस्तु, नमोस्तु।

(इस प्रकार के वचन सुनकर भगवान वहाँ खडे हो जाते हैं। राजा श्रेयांस,

भाई-भाभी के साथ प्रभु की तीन प्रदक्षिणा लगाते हैं उन्हें नवधा भक्ति पूर्वक इक्षुरस का आहार देते हैं। (नवधाभक्ति करते हुए दिखावें) उस दिन वहाँ देवों ने प्रसन्न होकर पंचाश्चर्य की वृष्टि की। आहार के पश्चात् सभी नर-नारी खुशी से झूमते हुए भक्ति गीत गाते हैं) आहार-सम्बन्धी भजन -

(अयोध्या नरेश भरत ने जब यह समाचार सुना तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। वे तुरन्त ही वहाँ से चलकर हस्तिनापुर आ गए। महामुनिराज के दर्शन किए और राजा श्रेयांस का बहुत ही सम्मान करके उन्हें "दान तीर्थ प्रवर्तक" की उपाधि से अलंकृत किया तभी से सम्मान की परम्परा का शुभारम्भ हुआ।)

(पुनः भगवान ऋषभदेव चलते-२ प्रयाग नगर के पुरिमतालपुर उद्यान में पहुँचे और तपस्या करते-२ एक हजार वर्ष बीत गए। तब भगवान को दिव्य केवलज्ञान प्रगट हो गया उस समय सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने अर्द्धनिमिष मात्र में आकाश में अधर समवसरण की रचना कर दी। उसमें बारह कोठो में देव, मनुष्य, विद्याधर, पशु-पक्षी आदि सभी उपस्थित हुए, भगवान की दिव्यध्वनि सुनने के लिए भारी जनसमूह उमड़ पड़ा सभी ने प्रभु की दिव्यवाणी को अपनी-२ भाषा में समझ लिया।)

(जब भगवान श्रीविहार करते हैं तब समवसरण तो विघटित हो जाता है और प्रभु आकाश में अधर गमन करते हैं इन्द्र प्रभु के चरण कमल के नीचे सुगन्धित स्वर्ण कमलों की रचना करता है, चारों ओर सुभिक्ष हो जाता है।)

इस प्रकार प्रभु ने एक दिन जान लिया कि मेरी आयु मात्र चौदह दिन शेष है वे विहार करके कैलाशगिरि पहुँच गए। एकाग्र ध्यान में लीन प्रभु को चौदह दिन बाद शिवलक्ष्मी ने वरण कर लिया।

तब इन्द्रों ने खूब दीपावली मनाई। भगवान के निर्वाण कल्याणक की खूब धूमधाम से पूजा की।

भरत को प्रभु के वियोग में दुःखी देख प्रमुख गणधर वृषभसेन ने सम्बोधा।

वृषभसेन : हे भव्य प्राणी! तुम अफसोस मत करो। तुमने तो उनसे बहुत कुछ सीखा है। (इस प्रकार के वचन सुनकर भरत को सन्तुष्टि हुई।) प्रभु ऋषभदेव के मोक्ष गमन के पश्चात् क्रम-२ से चौदह लाख राजाओं ने दीक्षा लेकर इस परम्परा का निर्वाह किया।

अन्त में, सूत्रधार :हे भगवान! अब मुझे भी परम्परा से मुक्ति धाम प्राप्त हो यही प्रार्थना है। भगवान ऋषभदेव की जय! आदि ब्रह्मा भगवान ऋषभदेव की जय!

भजन-१
(मंगल-गीत)

पुरुदेव की वाणी अखिल विश्व में अमृतकण बरसाये।
पुरुदेव की वाणी.....।।

युग की आदी में ऋषभदेव ने यहाँ पुण्य अवतार लिया ।
माता मरुदेवी के आँगन में, उत्सव अपरंपार हुआ।।
आये हैं इन्द्र सभी मिलकर भक्ति से अति हरषाये।
पुरुदेव की वाणी.....।।१।।

इस जंबूद्वीप के मध्य सुदर्शन मेरु सुवर्णमयी सुन्दर।
है एक लाख योजन ऊँचे, पर पांडुकशिला बनी मनहर।।
जिन शिशु को सुरपति ले जाकर वहाँ पर अभिषेक रचाएँ!
पुरुदेव की वाणी.....।।२।।

जो चन्द्रकिरण चंदन गंगाजल से भी है शीतल वाणी।
यह अनेकांतमय सत्य अहिंसा धर्मरूप है जिनवाणी ।।
तुम कर्णपुटों से पियो इसे सब जन्म रोग नश जाये।
पुरुदेव की वाणी.....।।३।।

घट-घट का अज्ञान अंधेरा उसको दूर भगाती है।
जन-जन के मानस मंदिर में यह ज्ञान की ज्योति जलाती है।।
तुम पूर्ण 'ज्ञानमति' प्रगट करो जिससे अशेष दुख जाये।
पुरुदेव की वाणी.....।।४।।

भजन-२

(गर्भकल्याणक गीत)

धरती का तुम्हें नमन है, आकाश का तुम्हें नमन है।
चन्दा सूरज करें आरती, छुटते जनम मरण हैं।।
सौ सौ बार नमन है।।
ऋषभदेव जिनवर को युग का सौ-सौ बार नमन है।। टेक.।।
प्रभु का गर्भकल्याणक उत्सव, इन्द्र मनाया करते।
छः महिने पहले कुबेर, रत्नों की वर्षा करते।।
तीर्थंकर माँ के आँगन में, बरसे खूब रतन हैं,
सौ-सौ बार नमन है। ऋषभदेव.....।।१।।
पिता उन्हीं रत्नों को, जनता में वितरित कर देते।
रत्न प्राप्त कर श्रावक जन, निज भाग्य धन्य कर लेते।।
धरती स्वर्णमयी बन जाती, पुलकित हुआ गगन है।
सौ-सौ बार नमन है। ऋषभदेव.....।।२।।
एक रत्न उनमें से प्रभु यदि, आज मुझे मिल जावे।
तब मेरा दुर्भाग्य "चन्दना", निश्चित ही खिल जावे।।
तुम सम गर्भागम मेरा भी, होवे यही जतन है।
सौ-सौ बार नमन है। ऋषभदेव.....।।३।।

भजन -३

तर्ज- काली तेरी चोटी है.....

आदिनाथ स्वामी का जनम कल्याण है।
अयोध्यापुरी में देखो कैसी धूमधाम है।।
सारा जग करता जिनके चरणों में नमन,
तीर्थंकर हैं प्रथम।।
पिता नाभिराय मरूदेवी के महल में।
आये थे ऋषभदेव महाप्रभु बनके।।
बजी थी बधाई मरूदेवी आंगन,
तीर्थंकर हैं प्रथम।।१।।
शचि इन्द्राणी का भाग्य खिला था।
जिन्हें प्रभु जी का पहला दर्श मिला था।।
मायामई बालक को सुलाया माँ के पास में।
माताजी को निद्रामग्न कर दिया आपने।
इन्द्र हुआ प्रभु जी को देख के मगन,
तीर्थंकर हैं प्रथम।।२।
पांडुक शिला पे, प्रभु न्हवन किया था,
क्षीरसागर से प्रासुक, जल को भरा था।
शचि ने फिर उनको, सजाया था खुशी से,
पालने में प्रभु को, झुलाया था खुशी से।
इन्द्र करे ताण्डव, नृत्य वहाँ झूम के,
सारे जन "चंदना" भक्ति में विभोर थे।।
नाभिराय नगरी में लुटाते थे रतन,
तीर्थंकर हैं प्रथम।।३।।

भजन-४

(जन्म समय बधाई गीत)

तर्ज-मेरे अंगने में.....

आदिनाथ प्रभु का जन्म हुआ आज है।
मरूदेवी माता पिता नाभिराज है। टेक.।।

अयोध्या की धरती, रतनमयी हो रही।
पन्द्रह महिने से यहां, रत्नवृष्टि हो रही।।
सारे नर नारी.....२, करें जयकार हैं।।आदिनाथ.।।१।।

पूर्व दिशा सूरज को, पाकर लाल हुई।
माता तीर्थंकर को, पाके निहाल हुई।।
स्वर्गों में भी बाजे.....२, बजे शंखनाद हैं।।आदिनाथ.।।२।।

नरकों में भी क्षण भर को, शांति मानो छा गई।
सारी धरती 'चंदना', बधाईयां गा रही।।
मानो आज सबको.....२, मिला साम्राज्य है।।आदिनाथ.।।३।।

भजन-५

(पालना गीत)

तर्ज-महावीरा झूले पालना नेक हौले.....

आदीश्वर झूले पालना, मरूदेवी लोरी गावें-२
मरुदेवी लोरी गावें, सब देवी उसे सुलावें।।आदीश्वर.।।
कहां प्रभु को जनम भयो है-२
कौन झुलावे पालना, मरुदेवी लोरी गावें।।आदी.।।१।।
नगरि अयोध्या में जनम भयो है-२
इन्द्र झुलावे पालना, मरुदेवी लोरी गावें।।आदी.।।२।।
कौन पिताश्री धन्य हुए हैं-२
किनने जायो लालना, मरुदेवी लोरी गावें।।आदी.।।३।।
नाभिराय पितु धन्य हुए हैं-२
मरुदेवी जायो लालना, मरुदेवी लोरी गावें।।आदी.।।४।।
स्वर्ग से इन्द्र इन्द्राणी आये-२
सभी झुलाएं पालना, मरुदेवी लोरी गावें।।आदी.।।५।।
नगरि अयोध्या के नर नारी-२
सभी झुलाएं पालना, मरुदेवी लोरी गावें।।आदी.।।६।।
माता पाकर धन्य हुई हैं-२
तीर्थंकर सा लालना, मरूदेवी लोरी गावें।।आदी.।।७।।
यही "चन्दना" मैं भी चाहूँ-२
पाऊँ प्रभु सा पालना, मरुदेवी लोरी गावें।।आदी.।।८।।

भजन-६

(नृत्य गीत)

आदीश्वर तेरी नगरी में धूम मची है-२।
मची है, धूम मची है-२।।आदीश्वर.।टेक.।।
सुना है इन्द्र भी दर पे तिहारे आते थे,
तेरे गुण को वे सभी मिल के यहां गाते थे।
तूने जब जन्म लिया रत्नवृष्टि करते थे,
तेरा जन्माभिषेक मेरू गिरि पे करते थे।।
यादों में वही मानो तस्वीर बसी है।।आदीश्वर.।।१।।
इसी नगरी को अयोध्या जी सभी कहते हैं,
यहीं जिनवर के सदा जन्म हुआ करते हैं।
ऋषभ भगवान की यह जन्मभूमि कहलाई,
पुनः श्रीराम की भी मातृभूमि कहलाई।।
दुनिया में इसी नगरी की धूम मची है।।आदीश्वर.।।२।।
ज्ञानमती माँ तेरे दर्शन को यहाँ आ गईं,
तीन चौबीसी औ समवसरण बना गईं।
ब्राह्मी माँ के समान पितु की शरण आ गईं,
ऋषभ भगवान की छवि उनके हृदय भा गई।।
'चन्दना' तभी नगरी चहुँ ओर सजी है।।आदीश्वर.।।३।।

भजन-७

(प्रार्थना)

नाम तिहारा तारनहारा, कब तेरा दर्शन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।टेक.।।

जाने कितनी माताओं ने, कितने सुत जन्में हैं।
पर इस वसुधा पर तेरे सम, कोई नहीं बने हैं।।

पूर्व दिशा में सूर्य देव सम, सदा तेरा सुमिरन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।१।।

पृथ्वी के सुन्दर परमाणु, सब तुझमें ही समा गये।
केवल उतने ही अणु मिलकर, तेरी रचना बना गये।।

इसीलिए तुझ सम सुन्दर नहिं, कोई नर सुन्दर होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।२।।

मन में तव सुमिरन करने से, पाप सभी नश जाते हैं।
यदि प्रत्यक्ष करें तव दर्शन, मनवांछित फल पाते हैं।।

आज "चन्दनामती" प्रभू का अनुपम गुण कीर्तन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।३।।

भजन-८

(दीक्षा का भजन)

तर्ज- ज्ञानज्योति आत्मा में जल गई.....

प्रभु जी सिद्धी कांता वरने चल दिये।
संग में चार हजार राजा चल दिये। प्रभुजी.।।
सारी धरती पर प्रभू का राज्य था, किन्तु प्रभु को हो गया वैराग्य था।
तज के सब संसार वे तो चल दिये, संग में.....।।१।।
वन में जाकर नग्न दीक्षा धार ली, अवध की जनता भी दुखी अपार थी।
पंचमुष्टी केशलुंचन कर लिये, संग में.....।।२।।

तर्ज- चल दिया छोड़.....

सब अथिर जान संसार, तजा घर बार, ऋषभप्रभु स्वामी।
फिर नहीं किसी की मानी। टेक.।।
पहले तो ब्याह रचाया था, सबको सब कुछ सिखलाया था।
राजाओं को भी राजनीति बतलानी,
फिर नहीं किसी की मानी।।१।।
इक दिन नीलांजना नृत्य हुआ, प्रभु का मन पूर्ण विरक्त हुआ।
दे पुत्र भरत को राज्य बने वे ज्ञानी,
फिर नहीं किसी की मानी।।२।।
रोती थीं सभी रानियां तब, नहिं रोक पाईं थी पति को जब।
भर अश्रुनयन कह रहीं वियोग कहानी,
फिर नहीं किसी की मानी।।३।।

भजन-६

(आहार भजन)

तर्ज- चन्दना पुकारे स्वामी.....

प्रभु ऋषभदेव का आहार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जय जयकार हो रहा। टेक. ।।
प्रथम प्रभू का प्रथम पारणा, प्रथम बार जब हुआ महल में। हुआ.....
पंचाश्चर्य की वृष्टि हुई थी, चौके का भोजन अक्षय हुआ तब।। अक्षय.....
भक्ति में विभोर सब संसार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जय जयकार हो रहा।।१।।
भरत ने नगरी अयोध्या से आकर, श्रेयांस का सम्मान किया था। सम्मान....
दानतीर्थ के प्रथम प्रवर्तक, कहकर उन्हें बहुमान दिया था। बहुमान.....
राजा के महलों में मंगलाचार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जय जयकार हो रहा।।२।।
सब मिल अक्षय तृतीया को, आहार दान का पर्व मनाओ। पर्व.....
गुरूओं को आहार दे इक्षुरस का मीठा प्रसाद बँटवाओ। प्रसाद.....
देखो कैसा धर्म का प्रचार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जय जयकार हो रहा।।३।।
गणिनी माता ज्ञानमती की, प्रबल प्रेरणा पाई सभी ने। पाई.....
ऋषभदेव की जन्मजयन्ती, मिलकर "चन्दना" मनाई सभी ने।। मनाई....
धर्म तीर्थ का अब पुनरूद्धार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जय जयकार हो रहा।।४।।

भजन-१०

(केवलज्ञान गीत)

तर्ज- अब ना छुपाऊंगा.....

दर्शन को जाना है, मस्तक झुकाना है, प्रभु की सुहानी छवि, मन में बिठाना है
समवसरण में भव्य प्राणी ही जाते हैं-२।टेक.।।
जिस आत्मा में भक्ती है, प्रभु बनने की शक्ति है।
चारों गति के जीवों में, भव्य शक्ति हो सकती है।।
नहिं अभव्य वहाँ जा सकते, प्रभु के दरस नहिं पा सकते।
दर्शन को जाना है.....।।१।।

मानस्तम्भों का दर्शन, करता है अभिमान गलन।
तब होवे सम्यग्दर्शन, दूर भगे मिथ्यादर्शन।।
फिर प्रभु के सम्मुख जाकर, दिव्य ध्वनि का करो श्रवण।
दर्शन को जाना है.....।।२।।

समवसरण की यह प्रतिकृति, ऋषभदेव प्रभु की मूरत।
है साक्षात् जिनेश्वर सम, आदिब्रह्म की प्रतिमूरत।।
इनके दर्शन वन्दन से, होते सब मनरथ पूरण।
दर्शन को जाना है.....।।३।।

गणिनी माता ज्ञानमती, को वन्दन करती धरती।
उनकी प्रबल प्रेरणा से, समवसरण की मिली कृती।।
यही "चन्दना" ग्रन्थों में, तीर्थंकर की सभा कही।
दर्शन को जाना है.....।।४।।

भजन-११

(केवलज्ञान गीत)

तर्ज- तुम तो ठहरे परदेशी.....

समवसरण दर्श करो, तो भव्य कहलाओगे।
यदि तुम अभव्य हुए, तो दर्श नहीं पाओगे। टेक. ।।
प्रभु जी की धर्म सभा, में जो भी आता है।
तुम भी दिव्यध्वनि को सुनो, तो भव से तिर जाओगे। समवसरण. ।।१।।
गूंगे भी वहां जाकर, बोलने लग जाते हैं।
तुम भी आज श्रद्धा करो, तो आत्मसुख पाओगे। समवसरण. ।।२।।
इन्द्रभूति गौतम का भी, मान गलित हुआ था जहाँ।
देखो वही मानस्तम्भ, मुक्तिपथ पाओगे। समवसरण. ।।३।।
दर्शनों के भावों से, मेढ़क ने देवगति ली।
दर्शन करो तुम भी तो, देवगती पाओगे। समवसरण. ।।४।।
तुम भव्य हो या अभव्य, इसका परीक्षण करो।
दर्शन से भव्यत्व की, श्रेणी में आओगे। समवसरण. ।।५।।

भजन-१२

(समवसरण गीत)

तर्ज- ऐ मेरे वतन.....

जिनधर्म के प्यारे भक्तों! सुनो समवसरण की कहानी।
इस समवसरण में विराजे, तीर्थंकर केवलज्ञानी। टेक.।।
तीर्थंकर जब तप करके , केवलज्ञानी बनते हैं।
तब इन्द्राज्ञा से धनपति, ये समवसरण रचते हैं।।
रत्नों की राशि लुटाकर, देते वे दिव्य निशानी।
इस समवसरण में विराजे, तीर्थंकर केवलज्ञानी।।१।।
श्री ऋषभदेव का पहला, बना समवसरण वसुधा पर।
महावीर प्रभू का अन्तिम, बना विपुलाचल पर्वत पर।।
संदेश विश्व को देकर, वरने को चले शिवरानी।
इस समवसरण में विराजे, तीर्थंकर केवलज्ञानी।।२।।
वही रूप दिखाने हेतू, यह समवसरण है आया।
सौधर्म इन्द्र ऐरावत, पर चढ़ दर्शन को आया।।
गणिनी माँ ज्ञानमती की, यह कृति "चन्दना" सुहानी।
इस समवसरण में विराजे, तीर्थंकर केवलज्ञानी।।३।।

भजन-१३

(सामूहिक नृत्यगीत)

तर्ज- रंग बरसे भीगे चुनर वाली.....

रंग छलके ज्ञान गगरिया से रंग छलके.....
हो....रंग छलके ज्ञान गगरिया से रंग छलके....हो....।टेक.।।
जग को होली का रंग सुहाता। -२
तुमको सुहाती ज्ञान गंग, जगत तरसे रंग छलके....हो....।।१।।
जग को सुहाती, जयपुर की चुनरिया। -२
तुम्हें भाती चरित्र चुनरिया, जो मन हरषे रंग छलके....हो....।।२।।
जग को सुहाते, रत्नन के गहने। -२
तुम्हें भाते ज्ञान के गहने, रतन बरसे रंग छलके....हो....।।३।।
जग को सुहाती, विषयों की लाली। -२
तुमको सुहाती जिनवाणी, जगत झलके रंग छलके....हो....।।४।।